ईशादि
नौ उपनिषद् काव्य में

(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर-उपनिषद्)

रमेशचन्द्र गुप्ता

हर साधारण मनुष्य की इच्छा होती है सब कष्टों से छुटकारा पाना। साधारण मनुष्य भौतिक उन्नति को ही इसका आधार मानता है। भौतिक उन्नति अस्थाई होती है जो इसी जीवन में साथ रहती है। आध्यात्मिक-ज्ञानी स्थाई सुख की कामना करता है, इस जीवन में भी और जीवन के बाद भी। वह भौतिक उन्नति को गौण मानता है और आत्मिक शान्ति के लिए सतत प्रयत्नरत रहता है।

ऋषियों ने अनन्त काल से इस मार्ग के लिए अपनी अनुभूतियों से जो ज्ञान अर्जित किया वही विलक्षण ज्ञान श्रुतियों के रूप में उपनिषदों में संकलित है। इसमें कोई भी डुबकी लगा सकता है।

उपनिषद् कहते हैं- ईश्वर सर्वव्यापक है पर मानव हृदय उसका सबसे प्रिय स्थान है। मनुष्य का ध्येय उसे प्राप्त करना है। कोई भी उसका दर्शन कर सकता है। उसे केवल इतना करना है कि बाह्य संसार से और संस्कारों से दृष्टि हटाकर हृदय में देखना है। जब तक संस्कार रहेंगे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होगा। संस्कारों से मुक्ति कैसे हो, उपनिषदों का यह विशेष विषय है।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि यदि कहीं त्रुटि नज़र आए तो उससे मुझे अवगत कराएँ ताकि त्रुटि सुधार का प्रयास किया जाए।

– रमेश चन्द्र गुप्ता

ईशादि नौ उपनिषद्

(काव्यानुवाद)

गायत्री मंत्र	काव्य अनुवाद
ओ३म् भूर्भुवः	ॐ प्राण में प्राण तू दूर करे दुख ताप।
स्वः तत् सवितुः	सुख दे सब संसार को जिसे रचे तू आप।
वरेण्यं भर्गो	देवों का भी पूज्य तू
देवस्य धीमहि	शुद्ध दीप्त करतार। हम तुझको धारण करें तू सबका आधार।
धियो यो नः	उत्तम गुण से युक्त हों जग में सब इनसान।
प्रचोदयात्।	धी पावन व्यवहार शुद्ध सब के कर भगवान।2..

ईशादि नौ उपनिषद्
काव्य में

(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर- उपनिषद)

लेखक
रमेश चन्द्र गुप्ता

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

ISBN : 978-81-943256-2-8

अयन प्रकाशन

1/20, महरौली, नई दिल्ली - 110 030

दूरभाष : 9211312372

e-mail : ayanprakashan@gmail.com

website : www.ayanprakashan.com

•

मूल्य : 600.00 रुपये

ISHADI NAU UPNISHAD (kavya)

by Ramesh Chander Gupta

मुद्रक : एस.पी. कौशिक एंटरप्राइज़ेज़, शाहदरा, दिल्ली-110093

भूमिका

हर साधारण मनुष्य की इच्छा होती है सब कष्टों से छुटकारा पाना। साधारण मनुष्य भौतिक उन्नति को ही इसका आधार मानता है। भौतिक उन्नति अस्थाई होती है जो इसी जीवन में साथ रहती है। आध्यात्मिक-ज्ञानी स्थाई सुख की कामना करता है, इस जीवन में भी और जीवन के बाद भी। वह भौतिक उन्नति को गौण मानता है और आत्मिक शान्ति के लिए सतत प्रयत्नरत रहता है।

ऋषियों ने अनन्त काल से इस मार्ग के लिए अपनी अनुभूतियों से जो ज्ञान अर्जित किया वही विलक्षण ज्ञान श्रुतियों के रूप में उपनिषदों में संकलित है। इसमें कोई भी डुबकी लगा सकता है।

उपनिषद् कहते हैं- ईश्वर सर्वव्यापक है पर मानव हृदय उसका सबसे प्रिय स्थान है। मनुष्य का ध्येय उसे प्राप्त करना है। कोई भी उसका दर्शन कर सकता है। उसे केवल इतना करना है कि बाह्य संसार से और संस्कारों से दृष्टि हटाकर हृदय में देखना है। जब तक संस्कार रहेंगे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होगा। संस्कारों से मुक्ति कैसे हो, उपनिषदों का यह विशेष विषय है।

इस पुस्तक में नौ उपनिषदों को हिन्दी काव्य में लिखने का प्रयास किया है। मैं स्वयं न तो संस्कृत का और न ही शास्त्रों का ज्ञाता हूँ। मैं अच्छा कवि भी नहीं, फिर भी यदि कुछ अच्छा लिखा गया तो ज़रूर यह मेरे गुरुदेव की अच्छाइ रही होगी। यदि यह काव्य थोड़े से भी साधकों को थोड़ा सा भी लाभ पहुँचा सका तो मैं अपने आप को धन्य समझूँगा।

मैं उन सज्जनों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने समय-समय

पर सुझाव देकर इस पुस्तक को लिखने में मेरी सहायता की। इस क्रम में सर्वप्रथम अपनी पत्नी प्रेम लता जी का आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर कई विषयों पर सुझाव दिए। स्वामी भजन दास जी दादूपथ से जुड़े हुए हैं। वे जयपुर में रहते हैं। वे कई विषयों के आचार्य हैं। आजकल जयपुर में एक औषधालय के माध्यम से समाज की निःशुल्क सेवा करते हैं। उन्होंने सारी पांडुलिपि पढ़ी और बहुमूल्य सुझाव दिए। आचार्य विद्याभानू जी जम्मू में हर बड़े यज्ञ में ब्रह्मा की भूमिका निभाते हैं। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान हैं। उन्होंने भी मेरी प्रार्थना स्वीकार करके पांडुलिपि को पढ़ा और सुझाव दिए। श्रीमती डॉ. तृप्ता भाभी संस्कृत की प्रोफेसर रही हैं, उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन समय-समय पर मिलता रहा है। मैं इन सबका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ क्योंकि इन सबके सहयोग के बिना यह ग्रंथ पूर्ण करना असम्भव था। अंत में मैं अपने बच्चों का आभारी हूँ जिन्होंने घर में मुझे लिखने का वातावरण दिया और प्रेरणा दी।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि यदि कहीं त्रुटि नज़र आए तो उससे मुझे अवगत कराएँ ताकि त्रुटि सुधार का प्रयास किया जाए।

– रमेश चन्द्र गुप्ता
48, रिहाड़ी कॉलोनी, जम्मू-180005
मोबा. नं. : 09622241873
01912560696

सरल भाषा में वेदान्त चिन्तन

वेदों उपनिषदों में पूरे विश्व को दिशा देने वाले श्रेष्ट विचार हैं। उपनिषदों की भाषा पवित्र संस्कृत होने के कारण सामान्य लोगों को समझने में कठिनाई होती है। ऐसा चिन्तन सामान्य लोगों तक पहुंचाने का कार्य श्री रमेश गुप्ता जी ने किया है यह अभिनन्दनीय है। संस्कृत में लिखे मंत्रों को सरल राष्ट्र भाषा हिंदी में कविता रूप में लिख कर सभी को समझाने का प्रयत्न किया है। सरल भाषा में उदान्त चिन्तन को सभी तक पहुंचाने का कार्य प्रशंसनीय है।

यह पुस्तक पढ़ने से आज की तरुण पीढ़ियों को हिन्दू धर्म, संस्कृति तथा भारत के श्रेष्ठ ज्ञान के प्रति स्वाभिमान निर्माण होगा, इससे प्रेरणा लेकर भारतीय समाज अवश्य ही समर्पण भाव से अपने धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्र की सेवा करने का संकल्प लेगा, यह मेरा विचार है।

- सुश्री शांता कुमारी
प्रमुख संचालिका
राष्ट्र सेविका समिती
नागपुर

अनुक्रम

ईशावस्योपनिषद्

शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ब्रह्म पूर्ण है जगत पूर्ण है

जगत ब्रह्म से निकला पूरा

पूर्ण ब्रह्म से जग निकला, पर-

शेष ब्रह्म पूरे का पूरा।

उपनिषद् सार

प्रारम्भ में दिए दोहे की बात अजीब लगती है पर आध्यात्म का गणित भौतिक संसार के गणित की तरह नहीं होता जहाँ

2+2 = 4 और 2−2 = 0 होता है।

आध्यात्म में 2+2 = 2 और 2−2 = 2 भी हो सकता है।

इस उपनिषद् में 100 वर्षों तक जीने की कामना की गई है और इसके लिए शास्त्रोचित कर्म करने की सलाह दी गई है।

ऋषि बतलाते हैं कि ईश्वर स्वयंभू है, सर्वव्यापक है, सबसे तेज चलता है। वह चंचल है और अचंचल भी। सब कुछ उसमें रहता है और वह सब कुछ में रहता है। जो कुछ दिखाई देता है वह ईश्वर है। वह शुद्ध है, उसका कभी क्षय नहीं होता। वह सब जगह जा सकता है। उस का न आदि है और न अंत है।

सांसारिक ज्ञान जिसे ऋषि **अविद्या** कहते हैं, उससे संसार जीता जा सकता है पर परमेश्वर से मिलन नहीं हो सकता। ईश्वर से मिलना है तो **विद्या** का, आध्यात्म का मार्ग अपनाना होगा। आध्यात्म से ज्ञानी को मोह से मुक्ति मिलेगी तथा ईश्वर की प्राप्ति होगी और मोक्ष की राह प्रशस्त होगी। ऋषि बतलाते हैं कि अन्त समय में मनुष्य को अपने सभी कृत्य याद आते हैं। उसे उन कर्मों का पछतावा होता है जो उसे नहीं करने चाहिए थे। इसलिए मनुष्य को जीवन भर ऐसे कर्म करने चाहिए कि बाद में पछतावा न करना पड़े।

: 1 :

जड़ चेतन दोनों के अंदर
व्याप्त सदा रहते जगदीश्वर
सब वैभव, किसका? लालच तज-
भोगो सब सन्यासी बन कर।

: 2.1 :

शत-वर्षों तक जो जीना है
कर्म बनाओ अपने साधन
कर्म करो केवल शास्त्रोचित
कर्म नहीं फिर होंगे बन्धन।

: 2.2 :

इस से भिन्न नहीं कोई मग
शास्त्रों में जिस का हो वर्णन
जिस को मानव अपनाए तो
कर्मों के कट जाएँ बन्धन।

:: 3 ::

असुर योनियों में दुख हैं औ-
ज्ञान नहीं अंधियारापन है
आत्मा के सब हत्यारों को
उनमें ही मिलता जीवन है।

:: 4.1 ::

ईश्वर एक तथा अविचल है
उसका मन से वेग अधिक है
वह सबका पूर्वज है उसका
ज्ञान नहीं कुछ, वेदों तक है।

:: 4.2 ::

ईश्वर स्थिर है, हर धावक से
तेज़ बहुत ज्यादा चलता है
उस से ही ले कर के ऊर्जा
आशुग फिर वर्षा करता है।

:: 5 ::

वह चंचल है और अचंचल
वह सब के भीतर बाहर है
वह सबसे ही निकट अधिक है
और सभी से दूरी पर है।

:: 6 ::

भूत सभी ईश्वर में रहते
सब भूतों में ईश उपस्थित
ऐसा ज्ञानी जो हो, उसको
घृणा किसी ने ना हो किंचित।

:: 7 ::

ज्ञानी जब सारे भूतों में

परमात्मा के करता दर्शन
मोह मिटे तब उसका सारा
और मिटें सब दुख के कारण।

:: 8.1 ::

शुद्ध शिराओं बिन, निष्पापी
सबका ज्ञाता, सर्वनियंता
आदि रहित, उत्तम, पर्यागत[1]
वह तेजस्वी, अक्षत, द्रष्टा।

:: 8.2 ::

सकल शुभाशुभ कार्य रचे पर
स्वयं-ब्रह्म बिन काया रहता
योग्य विभाग तथा रचना भी
युगों युगों से सब की करता।

:: 9 ::

पूज्य अविद्या जिनको भी हो
गहरे अंधियारे में पड़ते
(अनुचित) विद्या से इस से भी
गहरे अंधियारे में सड़ते।

:: 10 ::

विद्या[2] और अविद्या[3] दोनों
भिन्न-भिन्न हैं ये फलदायक
धीरज धारी श्रेष्ठ जनों ने
ज्ञान दिया यह हमको सम्यक।

:: 11 ::

विद्या अवर अविद्या का जब
ज्ञान किसी को होता पूरा
मरण अविद्या से वह जीते
अमृत पद विद्या के द्वारा।

:: 12 ::

उन लोगों की थाती तममय
जो नर नाशवान[4] को ध्यावें
पर भोगों हित ईश्वर पूजक
उससे गहरे तम को पावें।

:: 13 ::

व्यक्त[5] तथा अव्यक्त[6] उपासक[7]
दोनों के फल में बहु अंतर
ज्ञान दिया यह ऋषियों ने है
समझाया यह पास बिठाकर।

:: 14 ::

सगुण[8] अवर निर्गुण[8] ज्ञानों को
तात्विक्ता से जो समझे नर
सगुण ज्ञान से जीते मरना
औ निर्गुण द्वारा जगदीश्वर।

:: 15 ::

हिरण्य[10] ज्योति से सत्य[11] ढका
उससे पर्दा पूर्ण हटा दो

रूप मुझे फिर से नैसर्गिक
हे पूषण! अपना दिखला दो।

:: 16 ::

जग पालक, एकर्षे, यम तुम
तेज समेटो ब्रह्म-प्रिये अब
रूप दीखता सुखकारी है
जिसमें मैं, तुम औ सूरज सब।

:: 17.1 ::

तन तज करके अब प्राणों को-
निज देवों में मिल जाना है
अन्तिम घड़ियों में मैंने अब
अपना हर कृत पहिचाना है।

:: 17.2 ::

शरणागत मैं तेरी आया
दुष्कारज मेरे क्षमा करो
मुझ पर औ मेरे कर्मों पर
हे देवेश्वर! निज ध्यान धरो।
हे देवेश्वर......
हे देवेश्वर......

:: 18 ::

सब कर्मों के तुम ज्ञाता हो
अग्न रूप धारी हे पावन
अनुचित कर्मों को तज करके
मैं शुभ पथ का अब करूँ वरण।

:: 18.2 ::

पूर्ण तिमिर तुम दूर करो औ
उत्कर्ष करो सब का भगवन
पाप मिटाओ मग से सारे
शत बार करें हम तुझे नमन।

॥ इति ईशावस्योपनिषद् ॥

संदर्भ :

1. पर्यागत- सब जगत में जा सकता है
2. विद्या - आध्यात्मिक ज्ञान
3. अविद्या - सांसारिक ज्ञान,
4. नाशवान पूजा- भोग पदार्थों की पूजा,
5. व्यक्त- काया,
6. अव्यक्त- परमेश्वर
7. उपासक- उपासना करने वाला

8-9. सगुण अवर निर्गुण- श्रुति में असम्भूति और सम्भूति शब्द हैं जिन का अर्थ सगुण ज्ञान और निर्गुण ज्ञान है। सगुण से ब्रह्म लोक मिला है जहाँ से व्यक्ति का आना होता है। निर्गुण से लय अवस्था

10. हिरण्य ज्योति-चमचमाती रोशनी
11. सत्य- ईश्वर

केनोपनिषद्

उपनिषद् सार

इस उपनिषद् में ऋषि बतलाते हैं कि हमारी चेतनता प्राण के कारण है और प्राण की चेतनता परमेश्वर से। प्राणों का प्राण परमेश्वर है। वह इन्दिय्र से प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि सब इन्द्रियाँ उसी की प्रेरणा से कार्य करती हैं।

ईश्वर सब पदार्थों में विद्यमान है। सब पदार्थ केवल उसकी अभिव्यक्ति मात्र हैं। परमेश्वर को कोई पूरा जान नहीं सकता। ज्ञानी लोगों को उसका केवल आंशिक ज्ञान होता है पर वह भी उसकी ही कृपा से।

संसार के सारे कार्य उसकी कृपा से ही चलते हैं। उसकी कृपा न हो तो अग्नि एक तिनके तक को जला नहीं सकती, न वायु एक तिनके तक को उड़ा कर ले जा सकती है।

ईश्वर का ज्ञान हृदय में प्रेम पैदा करके इस विश्वास से साथ कार्य करने से होगा कि वह मिल सकता है और इसी जीवन में तभी मोक्ष मिलेगा।

प्रार्थना

वाणी, कान, नयन, प्राणादिक
करण बनें सब पौष्टिक पावन
कृपा करो तुम जगदीश्वर यह
दुख छूटें सब शान्त रहे मन।

पास बिठाकर ऋषियों ने यह
ब्रह्म ज्ञान है दिया घनेरा
मैं परमेश्वर को ना भूलूँ
त्याग करें ना वे भी मेरा।

उपनिषदों ने ईश्वर लक्षित
धर्म कर्म सारे समझाए
मैं साधक हूँ ईश्वर रत हूँ
प्रेम दीप यह जलता जाए।

इस दीपक के जल जाने से
पाप मिटें अब मेरे विविधा
हे परमेश्वर! कृपा करो अब
पाप मिटाओ त्रिविधा! त्रिविधा।

प्रथम खंड

1. शिष्य गुरु से पूछता है-
कौन प्राण को चंचल करता
कौन परेरे विषयों में मन
आँखों, कानों, औ वाणी से-
कारज करवाता सम्पादन।

2.1 गुरु बोले-
कान, नयन, वाणी, मन सबका
जो है कान, नयन, वाणी, मन
और प्राण जो सब प्राणों का
वही प्रेरणा का है कारण

:: 2.2 ::
जो भी ज्ञानी ऐसा समझे
औ जीवन यूँ यापन करता
उस ज्ञानी को मर जाने पर
निश्चित अमृत पद है मिलता

:: 3.1 ::
वाक, नयन, मन कर ईश्वर तक
जा पाना ना सम्भव किंचित

बुद्धि उस को छू ना सकती
ना सुनकर हो उस से परिचित।

:: 3.2 ::

विदित पदार्थ जो हैं जग में
भिन्न सभी से वह है भगवन
अनजाना भी उस सा ना है
समझाते यूँ सब-पूर्वज जन

:: 4 ::

वाणी बोल सके ना उसको
वाणी बोले उसके कारण
वाणी द्वारा जो पूजित है
वह पूजित भी ना है भगवन।

:: 5 ::

मन द्वारा ना समझा जाता
मन समझे सब उसके कारण
मन जिसको समझे औ पूजे
वह पूजित भी ना है भगवन।

:: 6 ::

वह आँखों द्वारा ना दिखता
आँखें देखें उसके कारण
आँखें जिसकी पूजा करतीं
दृश्य नहीं है वह भी भगवन

:: 7 ::

कान नहीं उसको सुन सकते
कान सुने सब उस के कारण
सुनकर जिस की, पूजा करते
शब्द नहीं है वह भी भगवन।

:: 8 ::

वह ना प्राणों से प्रेरित हो
प्रेरित प्राण उसी के कारण
प्राणों से जो कुछ प्रेरित हो
वह उत्प्रेरण भी ना भगवन।

॥ इति प्रथम खंड ॥

द्वितीय खंड

:: 1 ::

अगर तुझे ऐसा लगता है
तू ने ईश्वर समझा पूरा
तब तो तू ने जो समझा है
वह निश्चित अत्यल्प अधूरा।

:: 2 ::

तुझमें या जो देवों में है
यह उसका आंशिक विस्तारण
अल्प बहुत दोनों मिलकर भी
पुनः करो चिन्तन इस कारण।

शिष्य–

:: 2.1 ::

मैंने उसको समुचित समझा
ऐसा गुरुवर मैं ना कहता
उसको मैंने ना समझा है
ऐसा भी ना मैं बतलाता।

गुरु कहते हैं –

:: 2.2 ::

मैं जानूँ भी, मैं ना जानूँ
जो हममें यह अनुभव करता

ज्ञान उचित है उस साधक का
जो होता ऐसा परिज्ञाता।

:: 3 ::

जिसने समझा, वह ना समझा
वह ही सज्जन होता ज्ञानी
पर जो समझे समझ चुका वह
वह केवल होता अज्ञानी।

:: 4.1 ::

अब तक जो ऊपर समझाया
ज्ञान यही है समुचित, पावन
और इसी के द्वारा मानव
अमृत पद को करता धारण।

:: 4.2 ::

पर आत्मा को ज्ञान मिले यह
ईश्वर अनुकम्पा के कारण
ऐसा ज्ञानी बन करके ही
अमृत पद, नर करता धारण।

:: 5.1 ::

ज्ञान यही है, ज्ञानी जन यह-
अपने जीवन में अपनाते
पर जिस जिसने यह ना जाना
वे सब अपने जन्म गवाते।

:: 5.2 ::

सब लोगों में केवल ज्ञानी
समझा करते वह अविकारी
ऐसे ही नर मरने पर हों
मोक्ष परम पद के अधिकारी।

॥ इति द्वितीय खंड ॥

तृतीय खंड

:: 1 ::

विजय करी थी देवों के हित
परमेश्वर ने सब असुरों पर
अभिमानी देवों ने समझा
जीते वे अपने ही बल पर।

:: 2 ::

देख अहं देवों का ईश्वर-
यक्ष रूप धर करके आए
दिव्य दरस था, मद कारण ही
देव समझ ना ईश्वर पाए।

:: 3 ::

इन्द्रादिक बोले हे अग्नि!
पता लगाओ क्यों यह आया
अच्छा कहकर अग्न देव ने
जिधर यक्ष था, कदम बढ़ाया।

:: 4-5.1 ::

यक्ष निकट जब आए अग्नि
तब उससे बोले जगदीश्वर

अपना परिचय दो तुम सारा
जितने भी हो तुम ताकतवर।

:: 4-5.2 ::

अग्न कहाता मैं देवों में
जातवेद गौरवमय नाम
निश्चय कर लूँ तो भू पर मैं
भस्म करूँ सब कुछ अविराम।

:: 6.1 ::

यक्ष रखा तृण अवर यह बोले
जातवेद तुम इसे जला दो
जितनी भी ताकत है तुममें
वह सब पूरी अब दिखला दो।

:: 6.2 ::

जातवेद ने झोंकी ताकत
तिनका ज्वलित नहीं कर पाया
हार मान देवों से बोला
यक्ष मुझे तो समझ न आया।

:: 7 ::

पता लगाने के हित में तब
सब ने आशुग से की अनुनय
'अच्छा'-कह कर अशुग बोले
और यक्ष तक आए निर्भय।

:: 8-9.1 ::

बहुत निकट जब आए आशुग
यक्ष उसे बोले दो परिचय
तुम में जितनी ताकत रहती
उसको दिखला दो निःसंशय।

:: 8-9.1 ::

देवों में कहलाता वायु
नाम मातरिश्वा भी मेरा
सब कुछ धरती से ऊपर को
ले जाऊँ मैं बली, घनेरा।

:: 10.1 ::

यक्ष रखा तृण अवर यह बोले
इसे उड़ाकर तुम दिखला दो
जितनी भी ताकत है तुम में
पूरा अपना जोर लगा दो।

:: 10.2 ::

झपट पड़ा तिनके पर वायु
पूरा अपना जोर लगाया
उड़ ना पाया तिनका, बोले
यक्ष मुझे भी समझ न आया।

:: 11.1 ::

देव सभी फिर मिलकर बोले
देवेश्वर अब, तुम खुद जाओ

यक्ष यहां क्योंकर आया है
इसका निश्चय कर बतलाओ।

:: 11.2 ::

अच्छा कहकर सब देवों से
चलकर आए इन्द्र उधर तब
अन्तर्धान हुए परमेश्वर
उसको यूँ आते देखा जब।

:: 12 ::

हेमवती देवी तब प्रकटी
परमेश्वर जिस जगह जहाँ थे
माँ से बोले इन्द्र देवता
बतलाओ माँ कौन यहाँ थे?

॥ इति तृतीय खंड ॥

चतुर्थ खंड

:: 1.1 ::

माँ भगवती बोली–
उस रण में जो तुम जीते थे
अरु गर्वित हो जिसके कारण
वास्तविकता तो केवल यह है
रण जीते थे केवल भगवन

:: 1.2 ::

तुम सबका मद मर्दन करने
यक्ष रूप धर कर वे आए
(इन्द्र हुए लज्जित यह सुनकर
सोचा क्यों हम सब इतराए?)

:: 2 ::

इन्द्र, पवन अरू जातवेद ने
परमेश्वर के दर्शन पाए
इस कारण से ये तीनों ही
देवों में उत्तम कहलाए।

:: 3 ::

माँ की अनुकम्पा के कारण
इन्द्र समझ पाए परमेश्वर

ज्ञान उसे ही प्रथम हुआ यह
वह ही उत्तम हैं देवेश्वर।

:: 4 ::

आध्यात्मिक मिल जाती है
साधक को कुछ अनुभव मिलते
क्षणिक रहे जो तड़िता सम या
आँख झपकने तक ही रहते।

:: 5 ::

ईश निकट जब मन जाता है
करता उस का हर पल सिमरण
उत्कण्ठा होती वह पाऊँ
यह आध्यात्मिक है विश्लेषण।

:: 6 ::

ईश्वर ही तदवन कहलाता
परम प्रेम से पूजा जाता
जो यूँ समझे उस साधक को
प्रेम सभी जीवों पर आता।

:: 7 ::

तूने मुझसे पूछा है यह
ब्रह्मज्ञान समझाऊँ पूरा
अब तक जो समझाया समझो
ब्रह्मज्ञान यह नहीं अधूरा।

:: 8 ::

शुभ कर्मों का करना तप, दम
ब्रह्मज्ञान के हैं आधार
वेदों में यह सच्चा वर्णन
किया हुआ है सहविस्तार

:: 9 ::

इस विधि जो यह विद्या जाने
सारे पापों से वह छुटता
ब्रह्मपुरे में जा करके वह।
सदा वहाँ पर रहने लगता।।

।। इति चतुर्थ खंड ।।

इति केन उपनिषद्

कठोपनिषद्

ॐ तिहारा नाम ले
काज किया आरम्भ
आलस न आए कभी
और नहीं हो दम्भ।

---o---o---

तन आत्मा ईश्वर का रिश्ता
कैसा है यह विस्मयकारी
सारा जीवन साथ रहें पर
फिर भी परिचय की दुश्वारी।

उपनिषद् सार

इस उपनिषद् में ऋषि ने यम और नचिकेता को रूपक के रूप में प्रस्तुत करके आध्यात्म का विवेचन किया है। उन दोनों के संवादों का सार है -

ईश्वर नित्य है, अजन्मा है, अणु से अणुतर है, वह स्थिर भी है और चंचल भी। इतना चंचल कि मन की गति भी फीकी पड़ जाए। वह वायु रूप है और जिस शरीर में जाता है वही रूप धारण कर लेता है। वह अग्नि रूप है सारे संसार को प्रकाश और ताप देता है।

संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति मात्र है। संसार के सारे भोग और भोग-पदार्थ अनित्य हैं। जब भोग प्राप्त होता है तो आनन्द मिलता है पर इन भोगों को त्यागने में जो आनन्द मिलता है वह उनकी प्राप्ति के आनन्द से कई गुणा अधिक है।

जीवन का ध्येय नित्य परमानन्द की प्राप्ति है जो ईश्वर साक्षात्कार से हो सकता है पर ईश्वर साक्षात्कार अनित्य वस्तुओं से नहीं हो सकती।

ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ निवास स्थान हृदय है। वहाँ हमारी आत्मा का निवास भी है। वहाँ पर आत्मा को उस का साक्षात्कार हो सकता है। साक्षात्कार के लिए सब इन्द्रियों को शान्त कर मन के अधीन करना होगा, मन को, बुद्धि के अनुसार चलाना होगा और बुद्धि को आत्मा में रत कर आत्मा को ईश्वरमय करना होगा। तभी

सब संस्कार जो आत्मा पर आवरण के रूप में हैं, हटेंगे और ईश्वर साक्षात्कार सम्भव होगा।

जिसे ईश्वर प्राप्ति करनी है, उसे किसी योग्य गुरु के पास जाना होगा। वे जो शुभ उपदेश दें, उस पर मनन करना होगा। वह जो मार्ग सुझाएं उस पर सतत चलना होगा पर पूर्ण समर्पण भाव से। एक बात का ध्यान रहे ईश्वर उसे ही मिलता है जिसे यह विश्वास हो कि वह मिल सकता है और मैं उसे निश्चित प्राप्त करूँगा।

मंगलाचरण

:: 1 ::

हम दोनों रक्षित रहें
कृपा करो भगवान
साथी बनकर हम बढ़ें
शक्त रहें तन प्राण।

:: 2 ::

ज्ञान हमें जो भी मिले
तेज दिलाए ज्ञान
द्वेष किसी से ना करें
ताप हरो भगवान।
ताप हरो भगवान।
ताप हरो भगवान।

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

:: 1.1 ::

वाजश्रवस का सुत उद्धालक
एक समय पर ऋषि हुआ था
स्वर्ग कामना के हित उसने
सर्व-वेदसी यजन किया था।

:: 1.2 ::

दान अपेक्षित उससे था यह-
वह दे दे जो कुछ उसका था
नचिकेता उस का बेटा था-
जो उस का प्यारा सपना था।

:: 2 ::

बेटा तो चाहे छोटा था
पर उसमें थी श्रद्धा भारी
ज्ञान बहुत था उसमें सम्यक
सोच उठी उसमें यह प्यारी।

:: 3.1 ::

दान नमित गौएँ जो आईं
उनमें कुछ है ऐसी दिखती
नष्ट करण हैं, दूध रहित हैं
जल ना पीतीं ना कुछ खातीं।

:: 3.2 ::

दान करे जो ऐसी गौएँ
दुख लोकों में वह नर जाता
(सावधान मैं करूँ पिता को
ऐसा सोचा तब नचिकेता।)

:: 4.1 ::

नचिकेता ने यह सोच तो
बोला मैं धन तात तिहारा
दान मुझे, तुम किस को दोगे
बतलाओ वह देव पियारा।

:: 4.2 ::

पर कोई भी उत्तर ना सुन
उसने पूछा फिर दो बारी
क्रोधित हो उद्धालक बोले
तू तो है यम का अधिकारी।

:: 5 ::

शिष्य तथा बेटे त्रिविधा हों
मैं उत्तम या मध्यम जैसा

यम के किस कारज को करने
पूज्य पिता ने बोला ऐसा।

:: 6.1 ::
पूज्य पिता जी, भूतकाल के-
श्रेष्ठ पुरुष तब क्या थे करते
वर्तमान के भी अच्छे नर
कैसे नियमों पर हैं चलते।

:: 6.2 ::
जीवन का तो क्रम ऐसा है
जैसे सस्य पके यह पकता
जो भी धरती पर आया है
जीना मरना उस का बनता।

-सम्बन्ध
i नचिकेता जब यमपुर पहुँचा
यम था घर से तब अनुपस्थित
घर के बाहर बैठ गया वह
तीन दिनों तक तप में हो रत।
ii तीन दिनों उपरांत वहाँ पर
यम ने आ करके देखा जब
बहुत दुखित उस की भार्या थी
जिसने उससे बोला यूँ तब-

इन्द्राणि इन्द्र से बोली
:: 7 ::
हे वैवास्वत[1]! वैश्वानर बन

जब कोई घर आता ब्राह्मण
पाँव धुलाए जाते सुख हित
तुम जल लाओ अब इस कारण।

:: 8.1 ::

ब्राह्मण भूखा हो जिसके घर
मूर्ख कहा जाता वह दुर्मत
उस की आशा[2] और प्रतीक्षा[3]
पूर्ण नहीं होतीं वैवास्वत।

:: 8.2 ::

मिटते उसके पशुओं के धन
सुत, शुभ कर्मों के सारे फल
मीठे वचनों से भी उसको
मिलता कोई भी ना सम्बल।

सम्बन्ध

(अपनी भार्या की बातें सुन
यम चिन्तन में डूबे तत्क्षण
नचिकेता को सम्बोधित कर
बोले उस से, ये निम्न वचन:-)

:: 9.1 ::

नमन योग्य हो तुम हे ब्राह्मण!
नमन करूँ मैं बारम्बार
हे आवेशिक![4] तुम भूखे थे
तीन रात तक मेरे द्वार।

:: 9.2 ::

एक एक इस हर रात्री का
तीन वरों को तुमको दूंगा
तुम अपनी इच्छा अनुरूपी
जो माँगोगे वह मैं दूँगा।

नचिकेता बोला -

:: 10.1 ::

पूज्य पिता हैं गौतमवंशी
उनका सारा क्रोध मिटाओ
संकल्पों से शांत रहें वे
उनके सब दुख दूर भगाओ।

:: 10.2 ::

पहिचानें वे फिर मुझ को यम!
जब मैं जाऊँ अपने घर पर
मुझ से खुश हो करके बोलें
पहला तो दो मुझको यह वर।

यम बोले

:: 11.1 ::

तात तिहारा यह मानेगा
तुम मरने के मुख से लौटे
प्यार करेगा पहले-सा वह
तुम हो उसके प्यारे बेटे।

:: 11.2 ::

दुख उसके सब मिट जाएंगे

क्रोध उसे फिर ना आएगा
मेरे कारण बाकी आयु
सुखपूर्वक वह जी पाएगा।

नचिकेता बोला -

:: 12.1 ::

स्वर्ग पुरी में मरण नहीं है
कोई ना है भय इस कारण
भूख प्यास वृद्धापन ना है
सुख वैभवमय सबका जीवन।

:: 13 ::

स्वर्ग अगन[5] तुम जानो जिससे
अमर वहाँ हर प्राणी रहता
दूजे वर में वह समझाओ
मैं पूरी श्रद्धा हूँ रखता।

यम बोले -

:: 14 ::

स्वर्ग तथा ना-ना लोकों तक
जो ले जाती जानूं अग्नि
वह विज्ञों के हिय में रहती
समझो नचिकेता। तुम ज्ञानी!

:: 15.1 ::

स्वर्ग दिलाती जो है अग्नि
विश्लेषण कर, सब समझाया!

कितनी ईंटें[6], कैसे लगतीं
यह भी उसको सब बतलाया।

:: 15.2 ::

नचिकेता ने पूरा समझा
पूरा वापिस समझाया सब
नचिकेता की प्रतिभा देखी
हर्षित हो कर बोले यम तब-

:: 16 ::

तुझसे खुश हो करके अब मैं
एक अन्य भी देता हूँ वर
नाम तिहारे से यह अग्नि
जानी जाएगी जग अंदर।

:: 16.2 ::

दिव्य तथा यह विवधा रूपी
माला भी लो तुम हे ब्राह्मण!
देवत्व रहे सफल तिहारा
स्वीकारो तुम यह इस कारण।

:: 17.1 ::

जो भी हेता त्रिनानिकेता[8]
जन्म मरण ना उसको मिलता
मात पिता अरू आचार्यों के
सब कर्तव्यों से वह छुटता।

:: 17.2 ::

ब्रह्म जनित, जगती का ज्ञाता
जो यह जाने आशुग पावन
निष्कामी वह साधक जग में
शान्ति तथा सुख पाए निशिदिन।

:: 18 ::

जो मानव जानेगा यह त्रिक
औ इससे सम्बन्ध बनाए
मरना जीते, जीना जीते
मरकर देव लोक में जाए।

:: 19 ::

स्वर्गदायनी अग्न बताई
जो तूने वर माँगा दूजा
नाम दिया है तेरा इस को
माँगो अपना वर अब तीजा।

नचिकेता बोला–

:: 20.1 ::

कुछ कहते हैं मर जाने पर
आत्मा भी मर जाया करती
पर कुछ का ऐसा चिन्तन है
आत्मा नित है, यह ना मरती।

:: 20.2 ::

तीजे वर से यह समझाओ
दूर करो यह संशय मेरा

शिष्य तिहरा हूँ हे यम मैं
मैंने पकड़ा दामन तेरा।

यम बोले-

:: 21.1 ::

विषय बहुत ही यह सूक्षम है
देवों को भी संशय रहता
ज़िद छोड़ो, यह वर लोटा लो
कुछ दूजा माँगो नचिकेता।

यम से नचिकेता बोला-

:: 22.1 ::

हे यम! तुम मुझसे कहते हो
और नया वर माँगूँ फिर से
देवों ने भी समझा ना यह
देवों ने भी पूछा तुझसे।

:: 22.2 ::

तुमसे अच्छा कोई कैसे
इस सब पर पाऊँगा वक्ता
विषय गहनतम जब इतना है
ओर नहीं वर अच्छा लगता।

यम बोले -

:: 23 ::

माँगो अपना लम्बा जीवन
औ शत वर्षी पोते नाती

माँगो हाथी, घोड़े, गौएं,
सोना, बहु धरती, सुखदाती।

:: **24** ::

सम्राट बना सकता तुमको
फिर कहता हूं यह वर त्यागो
इच्छित लम्बा सुखमय जीवन
धन सम्पत्ति वैभव माँगो।

:: **25.1** ::

हाथी घोड़े रथ औ नाना
ये गणिकाएँ तुम ले जाओ
मानव को ये सब दुर्लभ हैं
सेवा इनसे तुम करवाओ।

:: **25.2** ::

भोग अन्य भी जो दुर्लभ हैं
ले लो जिनकी होवे इच्छा
पर मरने पर, आत्मा बारे
प्रश्न तजो यह, ना है अच्छा

नचिकेता बोला -

:: **26.1** ::

ये गणिकाएं, हाथी, रथ ये
पास रखो सब अपने ही यम
जितना भी जीवन होवेगा
छोटा होगा, वह होगा कम।

:: 26.2 ::

भोग बताए जो तुमने ये
क्षण भुंगर हैं औ दुखकारीं
तेज नष्ट सब करने वाले
क्षीण करण ये करते सारी।

:: 27.1 ::

तेरे दर्शन जो पाए हैं
जीने हित धन मिल जाएगा
बहु धन से ना इच्छा मिटती
इससे केवल दुख आएगा।

:: 27.2 ::

जब तक तेरा ही शासन है
मरने का भय ना है किंचित
दूजा वर ना मैं माँगूँगा
इच्छा यह ही कर दो पूरित।

:: 28 ::

सारे जीवों को मरना है
जितना भी हो लम्बा जीवन
मैथुन भोगों में सुख ना है
इनमें कोई ना आकर्षण।

:: 28.2 ::

प्रेम किसे होगा इन सबसे
साथ तिहारा पाया है जब

अजर, अमर, देवात्मा तुम हो
आदर्श तुझे अपनाया अब।

:: 29 ::

काया मरने पर जीवात्मा
क्या मरता है या ना मरता
गूढ़ विषय है सब संशित हैं
वर यह दो, यह उत्तम लगता।

॥ इति प्रथम वल्ली ॥

संदर्भ :

1. वैवस्वत सूर्य- पुत्र
2. आशा- अज्ञात वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करना
3. प्रतीक्षा- ज्ञात वस्तु की प्राप्ति की इच्छा
4. आवेशिक- अतिथि
5. अग्नि का अर्थ है- वह यज्ञ विधि, वह अग्नि विज्ञान, जिस के अनुष्ठान से स्वर्ग मिलता है
6. ईंटें- यज्ञ करने के सब अंग
7. त्रिनाचिकेता- मनुष्य के जीवन में तीन मोड़ आते हैं- ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वाणप्रस्थ, वाणप्रस्थ से सन्यास। जो श्रेष्ठ पुरुष इन तीन मोड़ों को पार करके चारों आश्रमों को पार हो जाता है वह त्रिनाचिकेता है। इन मोड़ों को पार करना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

द्वितीय वल्ली

यम बोले -

:: 1 ::

श्रेय एक मग प्रेय अन्य मग
भिन्न-भिन्न फल इनके कारण
प्रेय पतित करता पुरुषारथ
और श्रेय पथ सुख का साधन।

:: 2.1 ::

हर मानव के सम्मुख जग में
श्रेयस प्रेयस दोनों रहते
ज्ञानी जन सब धीरजपूर्वक
विश्लेषण दोनों के करते।

:: 2.2 ::

ज्ञानी श्रेयस पथ अपनाते
निश्चित ही जो है कल्याणी
पर लौकिक सुख भोगों के हित
चलते प्रेयस पथ अज्ञानी।

:: 3 ::

प्रिये भोग जंजीरें बनते
लगते बहुतों को ये प्यारे

सोच समझकर ही तूने हैं -

नचिकेता ये छोड़े सारे।

:: 4 ::

विद्या[1] और अविद्या[2] के फल

एक दूसरे से हैं उलटे

तुमने सब भोगों को त्यागा

तुम विद्या अभिलाषी सच्चे।

:: 5 ::

घोर अविद्या के अनुगामी

जो अपने को कहते पंडित

अंधे का ज्यों साथी अंधा

भटकें वैसे, वे हों दंडित।

:: 6 ::

जो मूरख है, धन का मोहक

वह परलोक करे न चिन्तन

लोक दिखे परलोक कहीं ना

फिर फिर उस को मिलता जीवन।

:: 7 ::

कोई नर यह चर्चा करता

कोई सुनने को यह आता

सुनकर समझें वे दुर्लभ हैं

अति दुर्लभ सम्यक परिज्ञाता।

:: 8 ::

अल्पज्ञों से निज चिन्तन से
सहज समझ में ना आता यह
तर्कोतर यह सूक्ष्मतम है
ब्रह्मलीन ही समझाता यह।

:: 9.1 ::

तुझ जैसी निष्ठा नचिकेता
तर्कों द्वारा ना हो उदभव
ब्रह्मज्ञान पूरित ही कोई
कर सकता है इसको सम्भव।

:: 9.2 ::

ऐसी निष्ठा से ही ज्ञानी
परम तत्व को खोजें ऐसे
हम भी यह आशा करते हैं
जिज्ञासु हों तेरे जैसे।

:: 10.1 ::

नित्य नहीं है कर्मों का फल
और अनित से नित ना मिलता
अनित पदार्थों द्वारा मैंने
अग्न जलाई है नचिकेता।

:: 10.2 ::

इस वैश्वानर के द्वारा ही
मैं नित परम धाम में आया

निष्कामी कर्मों के द्वारा

नित्य अवर उत्तम पद पाया।

:: 11.1 ::

स्वर्ग पुरी में सुख मिलते हैं

भोग अतुल औ यश वैभव है

शुभ कर्मों के फल हित निर्भय

बहुत समय रहना सम्भव है।

:: 11.2 ::

उसके गुण गायन हित बहु विधि

शास्त्रों ने उपदेश दिए हैं

तुम ज्ञानी हो दृढ़ निश्चेयी

तुमने ये सब त्याग किए हैं।

:: 12.1 ::

परदे पीछे हिय कंदरा में

ईश्वर रहता परम सनातन

आध्यात्मिक होकर ही कोई

कठिनाई से पाता दर्शन।

:: 12.2 ::

पर ऐसा सम्भव तो केवल

धीरज धारी ही कर सकते

परमेश्वर के दर्शन करके

हर्ष, शोक सब, जिनके मिटते।

:: 13.1 ::

पहले अनुभव युत ज्ञानी से
ज्ञान श्रवण करना पड़ता है
एकान्तिक हो, फिर इस सब पर
गहन मनन सम्भव बनता है।

:: 13.2 ::

गहन मनन करके ही केवल
ज्ञान समझ में आया करता
फिर आनन्द सदन ईश्वर के
दैवी दर्शन का सुख मिलता।

:: 13.3 ::

उस के दर्शन हो जाएँ तो
परम धाम के द्वार खुलेंगे
नचिकेता तुम अधिकारी हो
निश्चित तुमको ईश मिलेंगे।

नचिकेता बोला–

:: 14 ::

समझाओ वह पृथक रहे जो
धर्म–अधर्म कार्य कारण से
भूत, भविष्यत, वर्तमान से
बंधता जो ना कालगणन से।

:: 15.1 ::

यम बोले–

ध्येय बनाकर जिसको ज्ञानी

घोर तपों का करते पालन
नाना छंदों द्वारा जिसका
वेद सभी करते गुण गायण।

:: 15.2 ::

जिसको लक्षित करके योगी
ब्रह्मचर्य व्रत करते पालन
संक्षेपित वह पद बोलूँ तो
ॐ परम पद अक्षर पावन।

:: 16 ::

ब्रह्म तथा वह परम धाम भी
ॐ एक अक्षर है केवल
जो भी इसको जाने साधक
उसको ही मिलते इच्छित फल।

:: 17 ::

ब्रह्म प्राप्त करने के हित में
सब से उत्तम यह अवलम्बन
ब्रह्म पुरे में ऐसे साधक
महिमा मंडित हों इस कारण।

:: 18.1 ::

आत्मा पैदा ना होता है
ना ही यह आत्मा मरता है
अन्य किसी ने ना रचना की
ना ही यह खुद ही बनता है।

:: 18.2 ::

परम पुरातन यह ना जन्मे
एकरसी यह नित रहता है
काया के मर जाने पर भी
कभी नहीं आत्मा मरता है।

:: 19.1 ::

अगर कभी यह सोचे कोईं
बन सकता आत्मा का हंता
या मरने वाला यह सोचे
जब काया मरती वह मरता।

:: 19.2 ::

ऐसे दोनों में ना बुद्धि:
ऐसे दोनों ही अज्ञानी
आत्मा तो ना खुद मरता, ना-
इसको मारे कोई प्राणी।

:: 20 ::

अणु से अणुतम और महत्तम
हिय कंदरा में स्थित परमात्मन
शोक रहित निष्कामी को ही
ईश मिले पर ईश्वर कारण।

:: 21 ::

दूर पहुँचता बैठे बैठे
सोते-सोते सब दिक चलता

वह वैभव युत बिन मद ईश्वर
मेरे जैसा पुरुष समझता।

:: 22 ::

अस्थिर तन में नित्य महत्तम
परमेश्वर, बिन काया रहता
जो समझे वह सर्वव्यापी
दुख ना उसको कोई मिलता।

:: 23.1 ::

वेदों को ना पढ़ ना सुन कर
ना बुद्धि से मिलता ईश्वर
वह खुद चुनता ऐसा साधक
प्रक्टे जिस पर अनुकम्पा कर।

:: 23.2 ::

पर ऐसा साधक वह होता
जो कर देता पूर्ण समर्पण
उत्कट मिलने की इच्छा हो
तब ही उस पर प्रकटे भगवन।

:: 24 ::

पाप नहीं जो ज्ञानी त्यागे
शान्त नहीं जिसका अन्तरमन
करण नहीं हैं संयित जिसकी
मिले कभी ना उस को भगवन।

:: 25 ::

ब्राह्मण[3] क्षत्री[4] जिस का भोजन
और मृत्यु जिस का उपसेचन[3]
कौन समझ सकता वह ईश्वर
जो वैरागी ना होवे मन।

॥ इति द्वितीय वल्ली॥

संदर्भ :

1. विद्या- श्रेयस का मग
2. अविद्या- प्रेयस मग का ज्ञान
3. ब्राह्मण- आध्यात्मिक शक्ति का वाचक है
4. क्षत्री- भौतिक शक्ति का वाचक है
5. उपसेचन- चटनी

तृतीय वल्ली

:: 1.1 ::

जो करते पंचांग[1] यजन या

जो बन रहते त्रिनाचिकेता[2]

सत्य यही है वे यह बोलें

परम ज्ञान के सब अध्येता।

:: 1.2 ::

परम धाम में, हिय के अंदर

आत्मा परमात्मा रहते हैं

धूप छाँव-सा इनका रहना

ज्ञानी सब यह समझाते हैं।

:: 1.3 ::

मानव का जीवन अति दुर्लभ

जो मिलता शुभ कर्मों कारण

ब्रह्मज्ञान वेता ज्ञानी जन

एक रूप हो करते वर्णन।

:: 2 ::

इस नचिकेता[3] को जो समझे

सेतु बने भव पार कराए

निर्भय पद फिर मिल जाए जो-
ईश्वर के दर्शन करवाए।

:: 3 ::

समझो काया को यह रथ है
औ बुद्धि को इसका चालक
अश्व लगाम, हमारा मन है
आत्मा ही इस रथ का चालक।

:: 4 ::

करण कहाते घोड़े सारे
विषयों को जानो मग इन का
करण तथा मन युत आत्मा ही
कहलाता विषयों का भोक्ता।

:: 5 ::

दुष्ट अश्व हों रथ में जैसे
चालक का ना रहता अंकुश
करण तथा चंचल मन वैसे
अज्ञानी के ना होते वश।

:: 6 ::

अच्छा रथ चालक अश्वों पर
जैसे अपना अंकुश रखता
करण तथा मन अपने वश में
वैसे ही ज्ञानी नर रखता।

:: 7 ::

जो पावन ना अविवेकी है
जिसका ना होता संयित मन
मरने पर परमेश्वर ना पा
जग में फिर तन करता धारण।

:: 8 ::

जो ज्ञानी जन होते पावन
जिनका होता है संयित मन
वे सब परमेश्वर को पाकर
फिर फिर से ना पाएँ जीवन।

:: 9 ::

अच्छे रथ चालक सम जो नर
चंचल मन की करे सवारी
पार करे वह भव को औ फिर
उत्तम पद का हो अधिकारी।

:: 10 ::

विषय बली हैं सकल करण से
औ विषयों से मन बलशाली
मन से बुद्धि बहुत बली है
आत्मा है अपरम बलवाली।

:: 11 ::

यह अव्यक्त अवर बलशाली
परम पुरुष इससे बढ़कर है

वह सबसे ही उत्तम है औ
कोई उस से ना बड़ कर है।

:: 12 ::

परम बली वह जीवों में स्थित
पर माया से ढककर रहता
सूक्षम दर्शी सूक्षम धी से
उस ईश्वर के दर्शन करता।

:: 13 ::

मन में वाणी लयकर ज्ञानी
मन करते हैं वे धी में लय
धी करते आत्मा में लय औ
आत्मा कर लेते ईश्वरमय।

:: 14.1 ::

कितने युग बीते सोए हो
साधक उठकर जागो, जाओ
श्रेष्ठ जनों के चरणों में अब
बैठो ब्रह्म ज्ञान जा पाओ।

:: 14.2 ::

ब्रह्मज्ञान यह गहन बड़ा है
तेज़ छुरे पर चलने जैसा
तात्विक ज्ञानी समझाएँ ये
परमेश्वर से मिलना कैसा।

:: 15.1 ::

शब्द रहित है स्पर्श रहित है
रूप रहित ईश्वर अविनाशी
नित्य तथा हर गंध रहित है
परम, अनादि, नित्य, अधिशासी।

:: 15.2 ::

अन्त रहित है अरु निश्चल है
महत परम वह स्थिर है भगवन
जिसने ऐसा जाना उसके
जनन मरन के छुटते बन्धन।

:: 16 ::

नचिकेता को यम जो बोले
ये बातें सब परम पुरातन
सुन या वर्णन से मंडित हों
ब्रह्म पुरी में सब ज्ञानी जन

:: 17 ::

श्रद्धा-पूर्वक विद्वानों में
जो पावन मन इसे सुनाए
इस उत्तम कारज कारण वह
अविनाशी उत्तम पद पाए।

॥ इति वल्ली-3 ॥

संदर्भ :

1. पंचाँग- पाँचों यज्ञों को करने वाला
2. त्रिनाचिकेता- नचिकेता अग्नि का दिन में तीन बार वरण करने वाला
3. नचिकेता- नचिकेता अग्नि
4. चौथे मंत्र में आत्मा को भोक्ता कहा गया है- आत्मा स्वयं भोक्ता नहीं इन्द्रियों और मन के सहयोग से भोक्ता बन जाता है।

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

:: 1.1 ::

ईश्वर स्वयं हुए, वह रचते-
करण सकल, जिनका बाही मुख
जीव सदा से इस कारण ही
बाहर देखे औ पाए दुख।

:: 1.2 ::

कोई ही, अमृत अभिलाशी
करण करे अपनी अंतर्मुख
वह बलशाली नर ईश्वर के
दर्शन पाए, औ पाए सुख।

:: 2.1 ::

बाहर के भोगों के पीछे
सब अज्ञानी भागा करते
सब दिक है मरने का बन्धन
सब उसमें ही जाकर फसते।

:: 2.2 ::

अमर तत्व यह जो नर समझें
धीर पुरुष वे होते निश्चल
भोग अनित त्यागें वे सारे
जो हैं इच्छाओं की दलदल।

:: 3.1 ::

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध औ
मैथुन सुख जिस सत्ता कारण
उसके बारे में सोचो तो
वह सत्ता है केवल भगवन।

:: 3.2 ::

पर इन सबके सुख अंदर भी
होता केवल अस्थाईपन
जो यह अनुभव करवाती है
वह सत्ता भी केवल भगवन।

:: 4 ::

सुप्त तथा जाग्रत रहने पर
जिस सत्ता कारण सब दृगगत
जो वह उत्तम सत्ता समझे
वह ना पाए फिर दुख किंचित।

:: 5 ::

कर्म फलों का जो निर्णायक
भूत-भविष्यत का जो शासक

जिसको जानो सब भय मिटते
वह है परम ब्रह्म जग कारक।

:: 6.1 ::

जल आदिक भूतों से पहले
जो तप द्वारा प्रकटा करता
वह आत्मा का साथी बनकर
सब के हिय के अंदर रहता

:: 6.2 ::

जो भी मानव उस ईश्वर को
ऐसा समझे, यह है निश्चित
वह ही समझे उसको जिससे
तू होना चाहता है परिचित।

:: 7 ::

अदिति जगत में प्राण मयी है
धारण यह ही करती जीवन
सब भूतों के हिय में रहती
औ यह कहलाती है भगवन।

:: 8.1 ::

गर्भ- उदर में कोई नारी
रक्षित करके रखती जैसे
जातवेद[1] भी रक्षित रहता
बीच अरणियों के है वैसे।

:: 8.2 ::

सारे याज्ञिक इसको पूजें
यह सर्वज्ञ बताई जाती
जिस ईश्वर को तूने पूछा
वह ईश्वर यह ही कहलाती।

:: 9 ::

सूर्य जहाँ से निकला करता
अस्त जहाँ पर जा कर होता
देव सभी उसके अन्तर्गत
वह सब से उत्तम कहलाता।

:: 10.1 ::

काया में जो ईश्वर रहता
वह ही काया के है बाहर
जो काया के बाहर ईश्वर
वह ही काया के भी भीतर।

:: 10.2 ::

जो ना माने यूँ ईश्वर को
एक नहीं बहु रूपी कहता
वह ही मानव मरकर फिर फिर
जग में आता जाता रहता।

:: 11 ::

मन के द्वारा ही सब समझें
वह जिसको हम कहते ईश्वर

एक तत्व है, जो बहु समझें
मरण वही नर पाएँ फिर फिर।

:: 12.1 ::

तन के बीचों बीच तथा जो
ठीक मध्य में तन के स्थापित
नाप हाथ के अंगूठे का
भूत-भविष्यत उस से शासित।

:: 12.2 ::

हे नचिकेता! जिस मानव ने
उसकी जानी ऐसी महिमा
उसके सारे भय मिट जाते
वह ईश्वर है वह परमात्मा।

:: 13.1 ::

अँगूठे की मात्रा इसकी
धूम्र रहित, ज्योतित हिय अंदर
काल कभी कोई हो इस में
कभी नहीं आता कुछ अंतर।

:: 13.2 ::

अन्य ज्योतियाँ घटती बढ़तीं
पर यह एक रसी जग धारक
शुद्ध, दीप्त यह अविनाशी है
जिस को तू ढूंढे! हे साधक!

:: 14.1 ::

ऊंचे शिखरों से वर्षा जल
बहु रूपों में नीचे बहता
वैसे ही परमेश्वर जग में
दिव्य बहुत रूपों में रहता।

:: 14.2 ::

पर जो उसके किसी रूप के
पीछे-पीछे दौड़े प्रति पल
वह परमेश्वर को ना पाकर
उसी रूप को पाए केवल

:: 15 ::

शुद्ध सलिल में शुद्ध मिले जल
तब ही वह जल शुद्ध रहेगा
मननशील पावन आत्मा भी
ईश्वर में मिल ईश बनेगा।

॥ इति अध्याय-2 ॥

इति प्रथम वल्ली

संदर्भ :

1. जातवेद- अग्नि

द्वितीय वल्ली

:: 1 ::

एकादश द्वारों की नगरी
परमेश्वर का ही यह पुर है
ज्ञान स्वरूपी शुद्ध सरल औ
जन्म रहित वह जगदीश्वर है।

:: 1.2 ::

उसको ध्याने पर मानव के
शोक मिटें औ मिटते बन्धन
जन्म-मरण से मुक्त करे वह
वह ही कहलाता है भगवन।

:: 2.1 ::

वह आशुग बन नभ में रहता
घूमे सूरज बन अम्बर में
शुष्मा वह है इस धरती पर
आवेशिक बन आए घर में।

:: 2.2 ::

वह गोजा[1] है वह अब्जा[2] है
वह अद्रिज[3] भी बनकर आता

यज्ञ अग्न की वह सत्ता है
यज्ञों में होता[4] कहलाता।

:: 2.3 ::

वह जो मानव के अंदर है
वह ही रहता नभ के भीतर
परम सत्य वह ही ऋत[5] का है
वह ही देवों में जगदीश्वर

:: 3.1 ::

सकल अपान करे जो नीचे
और प्राण को ऊपर-ऊपर
मध्य भाग में हिय के अंदर
बैठा रहता वह जगदीश्वर।

:: 3.2 ::

सर्व श्रेष्ठ वह अधिशासी है
काया अंदर रहता आकर
सारे ही देवों के द्वारा
वह पूजा जाता सर्वेश्वर।

:: 4 ::

आत्मा बदला करती है तन
पर जब बदले अपनाया तन
शेष यहाँ पर जो रहता है
वह है सर्वव्यापी भगवन।

:: 5 ::

प्राण, अपान नहीं जीवन दें
दोनों अन्य किसी के कारण
जीवन जिसके आश्रित रहता
हे नचिकेता! वह है भगवन।

:: 6 ::

काया मरती तो जीवात्मा
क्या करती यह गुह्य, सनातन?
बतलाऊँगा तुझको फिर से
क्या कैसे होते हैं भगवन?

:: 7 ::

ज्ञान तथा कर्मों अनुरूपी
मरने पर मिलती है काया
कितने ही तो जंगम बनते
कितने पाएँ स्थावर काया।

:: 8.1 ::

हम चाहे सोएँ या जागें
पर वह हर क्षण रहता जागृत
भोग बनाए सारे उसने
प्रलय समय ना हो परिवर्तित।

:: 8.2 ::

शुद्ध परम अरु वह अमृत है
सब भूतों पर करता शासन

नियम न उसका कोई टूटे
जिसको हम कहते हैं भगवन।

:: 9 ::

एक अगन[6] है त्रिभुवन में जो
नाना रूपों को अपनाए
ईश्वर वैसे ही अपने को
तन में औ बाहर फैलाए।

:: 10.1 ::

सकल जगत में व्यापक वायु
नाना रूपी है नचिकेता
परमेश्वर भी नाना रूपी
और बिना रूपों के रहता।

:: 10.2 ::

सब लोकों का सूर्य नयन पर-
बाह्य विकार नहीं है उसमें
परमेश्वर भी सर्वव्यापक
ना ही कोई दुख है उसमें।

:: 11 ::

सब भूतों के अंदर वह है
और वही है सबके बाहर
लिप्त किसी में ना होता वह
रूप सजाए सब जगदीश्वर।

:: 12.1 ::

वह ही सबका अंतर्यामी
वह ही सबका करता नियमन
एकरूप बहु रूपी बनता
वह सबके अंतस में भगवन

:: 12.2 ::

सतत उसी का ही जो देखे-
अपने हिय के अंदर वैभव
उसको शाश्वत सुख मिलता है
ओर किसी को ना यह संम्भव।

:: 13.1 ::

नित्य सदा वह नित्यों में है
चेतन आत्माओं में चेतन
सबके अंदर बैठा सबके
कर्मों के फल करता नियमन।

:: 13.2 ::

धीर तथा ज्ञानी जो उसके
दर्शन में रत रहते प्रतिपल
शान्ति तथा सुख उनको मिलता
औरों को दुख ही दुख केवल।

सम्बन्ध :
यह सब सुन कर नचिकेता को
एक वहाँ पर संशय आया

अपने ही मन के अंदर तब
उस ने ऐसा प्रश्न उठाया।

:: 14 ::

वह सुख सागर वर्णित ना हो
समझ सकूँ, कैसे हो सम्भव
स्वयंमेव क्या वह प्रकटेगा
या होता वह केवल अनुभव।
(उसके भावों को समझकर यम बोले:-)

:: 15.1 ::

उसके सम्मुख सूर न चमके
चमकें चंदा औ तारे ना
तड़िता तड़-तड़ करना त्यागे
औ त्यागे निज अग्न दहकना।

:: 15.2 ::

जब उस का आलोक फैलता
सारे होते ये आलौकित
सारा जग भी हे नचिकेता
केवल उस से होता ज्योतित

॥ इति द्वितीय वल्ली ::

संदर्भ :

1. गोजा- पृथ्वी पर रहने वाला
2. अब्जा- जलचर

3. आद्रिज- पर्वत पर नाना रूपों में रहने वाला
4. होता- यज्ञों को करने वाला
5. ऋत- सत्य
6. अगन- सारा त्रिभुवन एक शक्ति का रूपक है, अगन।

तृतीय वल्ली

:: 1.1 ::

इस पीपल की जड़ ऊपर है
नीचे को हर शाखा आए
शुद्ध तथा अक्षत कहलाता
अमृतमय सुख जग में लाए।

:: 1.2 ::

अटल नियम हैं इसके सारे
तोड़ सकें ना नारी ना नर
इस पीपल के आश्रित सब हैं
और यही है वह परमेश्वर।

:: 2.1 ::

प्राण स्वरूपी परमेश्वर से
होता सारा जग उत्पादित
और जगत की सब चेष्टाएँ
उस ईश्वर से हैं अधिकारित।

:: 2.2 ::

वज्र उठाने पर जो दिखता
वैसा चारों दिक फैला भय

जिसने उसको समझा समुचित
जन्म-मरण छूटें, हो निर्भय।

:: 3 ::

अग्न तपन देती उससे डर
सूर्य तपाता उससे डर कर
देव-राज, यम, आशुग उससे
डर कर कर्मों में होते रत।

:: 4 ::

साधक मरने से पहले ही
अगर नहीं समझे वह भगवन
कल्पों तक उसको मिलता है
नाना लोकों में भौतिक तन।

:: 5.1 ::

दर्पन में काया की भाँति
ईश्वर दिल में दर्शन देते
पितर लोक में पितरों के सम्मुख
परमेश्वर सपनों सम मिलते।

:: 5.2 ::

जल में बिम्बों जैसे दिखते
गन्धर्वों[1] में वह परमात्मा
धूप तथा छाया सम दिखते
ब्रह्म[2] लोक में ईश्वर आत्मा।

:: 6 ::

रूप अनेक करण अपनावें
पृथक-पृथक हो जिन की सत्ता
उदय तथा ये लय भी होवें
धीर समझ यूँ दुःख ना करता।

:: 7 ::

सकल करण से मन अच्छा है
मन से होती बुद्धि गुरुतर
बुद्धि से गुरुतर आत्मा है
अव्यक्त परम है सबसे बढ़कर।

:: 8 ::

पर इस से भी बढ़कर होता-
निराकार वह सर्वव्यापक
जिसे जानकर मिलती मुक्ति
औ अमृत पद पाए साधक।

:: 9.1 ::

रूप नहीं है उसका कोई
ना आँखों से देखा जाए
जो ज्ञानी, मन नियमन कर ले
और मनन करना अपनाए।

:: 9.2 ::

उसके निर्मल मन में ईश्वर
निर्मल बुद्धि द्वारा मिलता

जो साधक उस को यूँ जाने
अमर वही साधक हो जाता।

:: 10 ::

पाँचों करण तथा अन्तर मन
शान्त तथा स्थिर हो जाएं जब
बुद्धि की चेष्टाएँ छूटें
परम अवस्था वह होने तब।

:: 11.1 ::

करण तथा मन तब स्थिर रहते
बुद्धि में भी आती स्थिरता
ऋषियों द्वारा यही अवस्था
योग कही जाती नचिकेता।

:: 11.2 ::

जब यह योग अवस्था बनती
साधक में ना रहता आलस
योग अवस्था ढल ना जाए
साधक चलते रहते समरस।

:: 12 ::

ईश मिलन वाणी या मन से
या नेत्रों से ना है सम्भव
पर ईश्वर है औ मिल सकता
जो ना माने उसे असम्भव।

:: 13.1 ::

पहले तो दृढ़ निश्चय पूर्वक
साधक माने उस की सत्ता
और उसे यह निश्चय होवे
वह परमेश्वर मिल भी सकता

:: 13.2 ::

ध्यान करे वह फिर श्रद्धा से
उसका करके तात्विक चिन्तन
ऐसे ही भक्तों को मिलते
जगदीश्वर के दैवी दर्शन।

:: 14 ::

जिनके मन अंदर स्थिरता हो
जिनकी मिट जाती इच्छाएँ
मार्त मनुज वे अमर बनें औ
परमेश्वर को समझें, पाएं।

:: 15 ::

जब साधक के मन के अंदर
गाँठ रहे ना कोई शेष
मार्त पुरुष वह अमर बने तब
यही सनातन है उपदेश।

:: 16.1 ::

हिय में शत अरू एक नाड़ियाँ
हिय से जातीं जो चारों दिक

उन में एक सुषमणा नाड़ी
ऊर्ध्व-चले जो ब्रह्म-रंद्र तक

:: 16.2 ::

जिसके इससे प्राण निकलते
अमृत पद पाए वह मरकर
शेष नाड़ियों से निकलें तो
जीव जगत में खाता चक्कर

:: 17.1 ::

मूँज अलग है सींक अलग है
सारे लोग समझते जैसे
परमात्मा भी काया ना है
पर रहता नर हिय में वैसे।

:: 17.2 ::

अँगूठे की मात्रा इसकी
समझें सब यह निष्ठापूर्वक
काया, आत्मा, ईश अलग हैं
यही ज्ञान है समझो साधक।

:: 18.1 ::

ज्ञान समझ यम से विधिपूर्वक
संशय सारे दूर भगाए
जीवन में नचिकेता ने यूँ
मरना जीता, ईश्वर पाए।

:: 18.2 ::

मुक्त विकारों से हो उसने
परम ब्रह्म् को पाया जैसे
ओर लोग भी ऐसा करके
परमेश्वर पा सकते वैसे।

॥ इति तृतीय वल्ली ॥

॥ इति कठोपनिषद् ॥

संदर्भ :

1. गंधर्वों में- ज्ञानियों में
2. ब्रह्म लोक में- ऋषियों मुनियों का लोक
3. मरने का बन्धन- जन्म-मरण का बन्धन। इन्द्रियों की रचना भगवान करता है इन्द्रियाँ बाही मुखी हैं और भगवान हमारे हृदय में दृगगत हो सकता है।

प्रश्नोपनिषद्

प्रश्नोपनिषद् काव्य का
पूरा हो शुभ काम
ॐ ध्यान कर शुरू किया
करूँ नहीं विश्राम।

किसी समय छह ऋषि हुए जिन के नाम थे-

1. सुकेश
2. सत्य काम
3. सूर्यायणी
4. आश्वलायण
5. भार्गव
6. कबन्धी

ये सब ऋषि महर्षि पिप्पलाद के आश्रम में ज्ञान प्राप्ति के लिए आए। ऋषि ने उन्हें एक वर्ष तक तप करने को कहा। उन्होंने एक वर्ष तक तप किया फिर गुरु पिप्पलाद के पास आकर जो ज्ञान प्राप्त किया, उसे छह प्रश्नों के रूप में गुरु से पूछा और गुरु ने जो उत्तर दिया वही प्रश्नोत्तर- प्रश्नोपनिषद् है।

पहला प्रश्न : कबन्धी का था- उसने पूछा गुरुदेव! जड़-चेतन की रचना कौन करता है?

पिप्पलाद बोले- जड़-चेतन की रचना ईश्वर करते हैं। इसके लिए ईश्वर ने प्राण और रयी का जोड़ा बनाया जिससे संसार की रचना होती है।

प्राण के रूप में सूर्य प्रथम आता है और चंद्रमा रयी रूप है। संवत्सर में उत्तरायण प्राण है और दक्षिणायन रयी। मास में शुक्ल पक्ष प्राण है और कृष्ण पक्ष-रयी। दिन रात में दिन प्राण है रात-रयी।

ऋषि कहते हैं संतान पैदा करना ईश्वरीय कार्य है पर स्त्री भोग रात्री को ही करना चाहिए। भोग संयमपूर्वक हो।

ऋषि बतलाते हैं मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए। छल, कपट नहीं करना चाहिए तभी ब्रह्मलोक में स्थान मिलता है।

दूसरा प्रश्न : भार्गव का प्रश्न था। उसने पूछा–

1. संसार को धारण कौन करता है?
2. कौन प्रकाश देता है? अर्थात् ज्ञान कौन देता है?
3. सब से उत्तम क्या है?

महर्षि ने समझाया आकाश ही सब को अर्थात पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल को धारण करता है जिनसे सृष्टि की रचना होती है।

वाणी आदि पाँच कर्मेंद्रिया, नेत्रादि पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और मन आदि चार अंन्तःकरण हैं। इन चौदह से ज्ञान मिलता है। सबकी शक्ति प्राण है और यही सर्वश्रेष्ठ है। यह प्राण की शक्ति है जिससे ताप मिलता है, जिससे वर्षा होती है। प्राण प्राणियों के लिए ब्रह्मा है। प्राण ही गर्भ में धारण होता है। यह प्राण ही है जिसके कारण सब के अंग कार्य करते हैं।

प्राण में कोई संस्कार अपना स्थान नहीं बनाता। यह संस्कार रहित रहता है।

संसार के सब पदार्थों में प्राण का अस्तित्व है और प्राण के सहारे ही सबका अस्तित्व है।

तीसरा प्रश्न : आश्वलायण ने पूछा–

i. प्राण को कौन पैदा करता है?
ii. यह काया में कैसे आता है?
iii. अपने को विभाजित करके शरीर में कैसे रहता है?
iv. एक शरीर से जाते समय कैसे निकलता है?
v. बाह्य जगत को वह किस प्रकार धारण करता है?
vi. मन और इन्द्रिय जगत को किस प्रकार धारण करती हैं

ऋषि ने समझाया– प्राण को आत्मा पैदा करती है, जैसे

शरीर छाया को। काया में, प्राण आत्मा के साथ मन द्वारा इक्ट्ठे संकल्पों को लेकर आता है। प्राण अपने आपको प्राण अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँच भागों में बाँटकर सारे शरीर का संचालन करता है।

चतुर्थ प्रश्न : सूर्यायणी ने चतुर्थ प्रश्न पूछा– गुरुदेव यह समझाइए

1. जब मनुष्य सो जाता है तो कौन से देवता सोते हैं?
2. कौन से देवता जागते हैं?
3. स्वप्नों को कौन देखता है?
4. निद्रा में सुख कौन अनुभव करता है?
5. सब किसमें आश्रय लेते हैं?

ऋषि ने उत्तर दिया–

i. इन्द्रियां सोती हैं। वैसे ही जैसे रात्री के समय सूर्य की सब किरणें सूर्य में सिमट जाती हैं। निद्रा के समय पुरुष की इन्द्रियाँ मन में सिमट जाती हैं।

ii. शरीर में पाँच अग्नियाँ जागती रहती हैं।

iii. मन भी स्वप्न में जाग्रत रहता है और अपना काम करता रहता है। यही सुने, अनसुने को सुनता है, देखे, अनदेखे को देखता है।

iv. मनुष्य के मन की अवस्था उस को आने वाले स्वप्नों से पता चलती है। जब मनुष्य तेजोमय होता है तब उसे कोई स्वप्न नहीं आता यह सुषुप्ति की अवस्था होती है।

v. जब किसी का मन आत्मा में स्थिर हो जाता है तब उस की तुरीय अवस्था होती है। वह तब सब कुछ का ज्ञाता बन जाता है।

पाँचवा प्रश्न : सत्यकाम ने पूछा– जो मनुष्य जीवन भर 'ॐ' की उपासना करता है वह इस उपासना के कारण कौन से लोक में जाता है?

ऋषि उत्तर देते हैं– ॐ की उपासना ईश्वर की उपासना ही है। 'ॐ' त्रैमात्रिक है। ॐ की एक मात्रा की उपासना अर्थात् ॐ की थोड़ी उपासना करना, ॐ की दो मात्राओं की उपासना थोड़ा ज्यादा मन लगाकर उपासना करना, थोड़ा गहरा उतरना है। ॐ की तीन मात्राओं की उपासना ॐ में लय हो जाना है। तब साधक शरीर को ऐसे त्यागता है जैसे साँप अपनी केंचुली उतारकर फैंकता है। वह ईश्वर को प्राप्त हो जाता है।

छटा प्रश्न : मुकेश ऋषि का प्रश्न था 16 कला सम्पूर्ण पुरुष को जानने के नमित।

ऋषि ने बताया- 16 कला पूर्ण पुरुष में 16 कलाएँ निम्नलिखित होती है– प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रियां मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म लोक तथा नाम। ये कलाएँ जीवन का अंश होती है अर्थात् जीवन इनसे बनता है। इनका ज्ञान पुरुष को आत्मविद् बनाता है और ईश्वर में लय पथ पर ले जाता है। ईश्वर में लय करवाता है।

ॐ शान्ति पाठ

हे करुणाकर! अनुकम्पा कर
सुख में सारा संसार रहे। हे करुणाकर....

:: 1 ::

देवेश्वर! दृढ़ तन अंगों को
ऐसे मग पर तुम ले चलना
तेरी पूजा में लगे रहें
तेरा ही दर आधार रहे। हे....

:: 2 ::

अपने कानों नेत्रों से हम
शुभ श्रवण करें शुभ ही देखें
सारे जग के कल्याण निमित
हम सबका सद्व्यवहार रहे। हे....

:: 3 ::

सब दिक् जिनका यश फैला है
वे इन्द्र सभी को सुख देवे
सर्वज्ञ परम पूषा माता
सब पर उनका उपकार रहे। हे......

:: 4 ::

देवों द्वारा निश्चित आयु
जितनी भी हम को मिली हुई
वह सब देवों हित जीवें हम
सुख में आश्रम परिवार रहे। हे......

:: 5 ::

कल्याणी होवें गरुड़ सदा
अरु धी को देवें बृहस्पति
सुख शान्ति रहे सारे जग में
शान्ति! शान्ति! सुख प्यार रहे। हे......

प्रथम प्रश्न

ॐ

:: 1 ::

भारद्वज सुत सुकेश, सत्यकाम
सूर्यायणी अरु आश्वलायण
श्रेष्ठ विदर्भ निवासी भार्गव
आर्य कबन्धी वेद परायण।

:: 1.1 ::

ब्रह्म खोज को करते करते
ब्रह्म निष्ठ वे छहों ऋषिवर
पिप्पलाद के आश्रम आए
ब्रह्म समझने की इच्छा कर।

:: 1.2 ::

हाथों में इनके समिधा थीं
निष्ठा जिज्ञासा थी भारी
ऋषि बताएँगे निश्चित ही
ब्रह्मज्ञान की बातें सारी।

:: 2 ::

पिप्पलाद उनसे बोले-

ब्रह्मचर्ययुत, श्रद्धापूर्वक
एक वर्ष तप करो यहाँ पर
ज्ञान मुझे जो भी जितना है
दूँगा तुमको, पात्र समझकर।

सम्बन्ध-
एक वर्ष तक निष्ठापूर्वक
वे तप करके, फिर सब आए
श्रद्धापूर्वक पिप्पलाद से
एक एक ने प्रश्न उठाए।

:: 3 ::

कबन्धी ने प्रश्न किया-
गुरुवर! जग में पैदा होते
नाना रूपों में जड़-चेतन
किस रचनाकर ने रचना की
ज्ञान हमें दो पूरा भगवन।

:: 4 ::

ऋषि बोले-
प्राण रचाने की इच्छा से
ब्रह्मा जी ने तप कर भारी
प्राण रयी[1] का युगल सजाया
विविधा जगती रचने सारी।

:: 5 ::

सूर्य प्राण बन, नभ में रहता
सबके प्राणों का वह कारण

मूर्त-अमृर्त सभी का पोषक
चाँद रयी है हे कात्यायण!

:: 6.1 ::

रात ढले तो सूरज जग में
पूर्व दिशा में देता दर्शन
अपनी किरणों से उस दिक के
सब प्राणों को करता धारण।

:: 6.2 ::

वह ही दक्षिण पश्चिम उत्तर
ऊपर-नीचे किरणें लाता
बीच दिशाओं में भी वह ही
सब में जीवन को प्रकटाता।

:: 7.1 ::

सूर्य हमारी काया में आ
अन्न पचाता वैश्वानर बन
और सूर्य ही हर प्राणी में
प्राणों का करता संचालन।

:: 7.2 ::

पिप्पलाद ने यह बतलाकर
फिर भी उस को संशित पाया
निम्न ऋचा के द्वारा फिर तब
उसका संशय दूर भगाया।

:: 8 ::

सब रूपों का केंद्र विभाकर
यह ज्योतित, सर्वज्ञ, हरिण[2] है
तपती लाखों किरणों द्वारा
शतधा यह देता जीवन है।

:: 9.1 ::

संवतसर[3] भी प्रजापति है
दो भागों में बटकर रहता
दक्षिण मग है रूप रयि का
उतरायण मग प्राण कहाता।

:: 9.2 ::

इष्ट[4] पूर्त[5] कर्मों को ही जो
श्रेष्ठ समझकर करता पूजन
चंद्र लोक को वह नर जीते
दक्षिण मग जाए इस कारण।

:: 9.3 ::

रयी कहा जाता यह मग[6] है
जिस पर जब कोई भी चलता
फिर फिर वह नर इस धरती पर
जीवन ले कर आया करता।

:: 10.1 ::

निष्कामी नर तप के द्वारा
ब्रचचर्य व्रत करते पालन

श्रद्धापूर्वक ढूढ़ें ईश्वर
जीवें वे आध्यात्मिक जीवन।

:: 10.2 ::

मानों वे सब संवतसर के
उत्तरायण की करते पूजा
सूर लोक को विजित करें वे
और उसी में वे रहते जा।

:: 10.3 ::

निर्भय करता यह अमृत पद
इसको पाकर मिलती मुक्ति
यह पद पाकर ना लौटें वे
परम अवस्था दे यह भक्ति।

:: 11 ::

पाँच[6] पैर द्वादश[7] आकृतियां
सूर पितर द्यौ[8] से पर[9] रहता
कुछ कहते यह सातचक्र[10] का
औ छे अर[11] युत सब का ज्ञाता।

:: 12.1 ::

एक महीना प्रजापति है
शुक्लपक्ष है इसका प्राण
कृष्णपक्ष को सारे ज्ञानी -
नाम रयी से दें पहिचान।

:: 12.2 ::

ऋषियों द्वारा शुभ कार्यों का
शुक्ल पक्ष में हो आयोजन
कृष्णपक्ष में संसारिक जन
कर्मों का करते संपादन।

:: 13.1 ::

रात तथा दिन का जोड़ा भी
जग के अंदर प्रजापति है
दिन को प्राण समझते ज्ञानी
रात रयी जानी जाती है।

:: 13.2 ::

हर पल भोगों में जो रत हो
औ दिन में भी भोगे नारी
उस मानव के ऐसे कारज-
हर लेते हैं काया सारी।

:: 13.3 ::

पर जिस भी मानव का अपना
संयमित होता पूरा जीवन
रात्री में ही नारी भोगे
ब्रह्मचर्य व्रत यह है पालन।

:: 14 ::

अन्न कहाता प्रजापति है
इस से बनता वीर्य हमारा

और इसी के द्वारा जग में
जीवन का क्रम चलता सारा।

:: 15.1 ::

संतानों की इच्छा कर जो-
प्रजापति व्रत करते धारण
इस व्रत से पा कर संतानें
सुख से करते उनका पालन।

:: 15.2 ::

जो भी ब्रह्मचर्य व्रत धारें
जिससे सत्यप्रतिष्ठित रहता
ब्रह्मलोक के अधिकारी हों
ब्रह्मलोक उन सबको मिलता।

:: 16 ::

जो मानव ना कपटी होते
जो ना करते मिथ्या भाषण
और विकार रहित रहते जो
ब्रह्मलोक पाएँ वे सज्जन।

॥ इति प्रथम प्रश्न ॥

संदर्भ

1. प्राण- चेतन भोक्ता, रयी- जड़ भोक्ता, अर्थात् सृष्टि स्वयं नहीं बनी प्राण और रयी के द्वित्व से बनी है।

2. हरिण- सूर्य की किणें जल का हरण करती है।

3. संवतसर- प्रजापति इसलिए कहा क्योंकि कुछ लोग काल को जनन का कारण मानते हैं।

4. इष्ट कर्म- श्रेष्ठ कर्म

5. पूर्त कर्म- वे कर्म जो किए जाते हैं। (तप, चिन्तन) सूर्य प्राण कहाता है और चाँद रयी क्योंकि सूर्य सब के प्राणों का कारण है और चांद एक मृत प्लेनेट (Planet) इस कारण पदार्थों का योतक है।)

(नोट : पहले मंत्र में जिस क्रम में ऋषियों का नाम है उन के प्रश्न उनके उलटे क्रम में है।)

6. पाँच पैर- हेमन्त और शिशिर को एक मानकर छह को जगह पाँच ऋतुएँ

7. द्वादश आकृतियाँ- बारह मास

8. द्यौ- स्वर्ग

9. पर- अपूर्व

10. सात चक्र सात रंग किरणों के

11. छे अर- छह ऋतुएँ

द्वितीय प्रश्न

:: 1 ::

भार्गव ने प्रश्न किया–

गुरुवर! यह बतलाओ कितने
देव प्रजा को धारण करते
कौन कौन आलोक[1] छिटकते
किसको सारे उत्तम कहते।

:: 2.1 ::

ऋषि बोले–

ईश्वर ने आकाश बनाया
जो सारी सृष्टि का संबल
इसमें ही संजोए हैं सब–
पृथ्वी, आशुग, अग्न तथा जल।

:: 2.2 ::

ये ही सारे महाभूत मिल
पार्थिव काया करते धारण
सब जीवों की काया होती
इन सारे भूतों के कारण।

:: 2.3 ::

वाणी आँखें आदिक औ मन
ये काया करते आलौकित
इन सबने गर्वित हो सोचा
काया केवल उनके आश्रित।

:: 3.1 ::

प्राण श्रेष्ठ मैं। तुम सबसे हूँ
मोह करो ना तुम सब किंचन
पाँच भाग में बांटू निज को
सारी कायां करता धारण।

:: 3.2 ::

मेरे ही इन रूपों द्वारा
सबको जग में मिलता आश्रय
पर सारे ही देवों को तब
गुस्सा आया जागा संशय।

:: 4.1 ::

बाहर आने के हित तनकर
प्राण उठा थोड़ा-सा ऊपर
अन्य देवता भी तत्क्षण ही
बाही दिक को दीखे तत्पर।

:: 4.2 ::

काया में ही कुछ ऊपर उठ
प्राण वहाँ पर बैठा रुक, कर

अन्य देवता भी ऐसे ही
वहीं रुके वे पहुँचे जिस दर।

:: 4.3 ::

नृप दीखे तो हर मधुमक्खी
छत्ते से आ जाती बाहर
नृप बैठे तो वे सारी ही
बैठे वैसे ही तब जाकर।

:: 4.4 ::

सब देवों का काया अंदर
कारज भी तो वैसा ही था
प्राण रुका तो वैसे ही रुक
सबने तब अनुसरण किया था।

:: 4.5 ::

सबने मिलकर पहचाना तब
प्राण श्रेष्ठत्तम है इस कारण
उसकी पूजा करने के हित
सबने तब गाया गुण गायण।

:: 5.1 ::

प्राण अगन में तप रूपा है
यह सूरज है, मेघ रचाता
यह आशुग है, इन्द्रदेव है
यह ही पृथ्वी भी कहलाता।

:: 5.2 ::

प्राण परम है, रयि[1] रूपा भी
असत तथा सत दोनों प्राण
जग में सर्वश्रेष्ठ अमृत जो
यह भी इस की है पहिचान।

:: 6.1 ::

अरे लगाए जाते रथ में
रथ चलता है जिनके कारण
साम, यजुर, ऋक औ यज्ञों में
प्राण सदा वैसे ही स्थापन।

:: 6.2 ::

शुभ कर्मों को करने वाले
क्षत्री कहलाते या ब्राह्मण
इन शुभ करने वालों का भी
प्राण सदा है आश्रय कारण।

:: 7 ::

प्राण! प्राणियों का तू ब्रह्मा
गर्भ बना तू ही आता है
बाल रूप में तू ही जन्मे
सब अंगों में तू रहता है।

:: 11 ::

संस्कार[1] रहित, तू अति उत्तम
परम पिता तू, तू नभ गामी

अन्न करें हम अर्पित तुझको
तू ही भोक्ता, तू ही स्वामी।

:: 12 ::

कान, नयन, वाणी अरू मन में
तू रहता है प्राण प्रतिष्ठित
काया से बाहर जाने की
तू चेष्टा ना करना किंचित।

:: 13.1 ::

सारे के सारे त्रिभुवन में -
वस्तु जहाँ पर जो भी मिलती
प्राण तिहारे आश्रित है वह
अतः सुनो हम सबकी बिनती।

:: 13.2 ::

मात पिता सब जैसे अपने
बच्चों के होते हैं रक्षक
तू भी हम सबका वैसे ही
बन करके रहना हितचिन्तक।

:: 13.3 ::

जीवन सबका ऐसा होवे
जिसमें होवे श्री, धन, वैभव
हम सारे हों प्रज्ञाधारी
प्राण बना देना यह सम्भव।

॥ इति दूसरा प्रश्न ॥

संदर्भ :

1. संस्कार रहित- अच्छा बुरा कोई संस्कार नहीं
2. रयी - प्राण पृथ्वी रूप हैं इसलिए रयि रूप हुआ

तृतीय प्रश्न

:: 1.1 ::

कौशल देशीय आश्वलायण ने प्रश्न किया -

ब्रह्म ऋषिवर समझाओ यह
कौन प्राण को पैदा करता
और प्राण फिर कैसे गुरुवर
काया के अंदर आ रहता।

:: 1.2 ::

अंगों में बढ़कर कैसे यह
तन में रहता औ त्यागे तन
कैसे बाह्य जगत, मन, इन्द्रियाँ-
आध्यात्मिकता करता धारण।

:: 2 ::

ऋषिवर बोले -

ब्रह्मनिष्ठ तू तात्विक ज्ञाता
प्रश्न कठिन हैं पुत्र तिहारे
पर तू सच्चा जिज्ञासु है
उत्तर दूँगा समुचित सारे।

:: 3.1 ::

प्राण करे आत्मा ही पैदा
और वही है इसका कारण
जैसे मानव की छाया का
खुद मानव ही बनता साधन।

:: 3.2 ::

मर कर ऐसा तन धारे यह
मरण समय पर जैसा हो मन
जो संकल्प करे आत्मा तब-
वैसा पाए यह नूतन तन।

:: 4 ::

पृथक पृथक जनपद में राजा
पृथक पृथक अधिकारी रखता
मुख्य प्राण भी निज अंगों को
तन अंगों में स्थापित करता।

:: 5.1 ::

गुदा उपस्थ अपान बिठाया
मल त्यागे जिसके कारण तन
नाक, कान, मुख अंगों में यह-
खुद बैठे, करता संचालन।

:: 5.2 ::

मध्य समान रखे अधिकारी
जो सारे कारज करवाए

अन्न तथा जल हवन करें जो
प्राण अगन से उसे जलाए।

:: 5.3 ::

अन्न तथा जल से निकृत रस
समुचित काया में फैलाता
सात ज्योतियाँ[1] जिससे जागें
जिनसे यह कारज करवाता।

:: 6 ::

हृदय क्षेत्र में जीवात्मा है
शतक नाड़ियां जिस के भीतर
एक एक सो उपनाड़ी है
हर नाड़ी में रहती आकर।

:: 6 ::

एक एक उस उपनाड़ी में
बहत्तर हजार उपशाखाएँ
'ब्यान' बहे उनसे वायु औ
जीवन जिस कारण मुसकाएँ।

:: 7.1 ::

एक अलग नाड़ी है जिससे
प्राण 'उदान' उठे यह ऊपर
पुण्यों द्वारा जो आत्मा को
पुण्य लोक में जाता लेकर।

:: 7.2 ::

पर पापी को पाप लोक में
ले जाता है जिसमें हैं दुख
पाप पुण्य जो दोनों करते
मानव तन पा भोंगे दुख-सुख।

:: 8.1 ::

उदित सूर्य ही बाह्य प्राण है
जो आँखें करता अनुग्रहित
पृथ्वी ही इस जग के अंदर
प्राण-अपान रखे सुस्थापित।

:: 8.2 ::

स्वर्ग, धरा के बीचों बीच
आकाश समान रखे अनुशासन।
नभ में जो आशुग रहता है
ब्यान यही जीवन का कारण।

:: 9 ::

तेज[2] उदान तुही कहलाता
जो जब तन से बाहर आता
मन में लीन करण कर, आत्मा-
दूजी काया में ले जाता।

:: 10 ::

संस्कारों युत आत्मा लेकर
मुख्य प्राण से मिलता तत्क्षण

तेजोमय तब मुख्य प्राण ही
उचित उसे तब देता जीवन।

:: 11 ::

उचित जिसे है ज्ञान प्राण का
नष्ट नहीं होवे उसका कुल
अमृत पद पाए वह साधक
परमेश्वर का लेकर सम्बल।

:: 12.1 ::

पाँच तरह का ज्ञान जिसे यह
प्राण कहां से पैदा होता
कैसे काया में आ रहता
कितनी है इस की व्यापकता।

:: 12.2 ::

आध्यात्मिकता और बाह्य का
तादात्म्य है कैसे रहता
ऐसे ज्ञानी को ही केवल
अमृत सुख सेवन हित मिलता।

॥ इति तृतीय प्रश्न ॥

संदर्भ

नोट : कुछ विद्वानों का मत है प्राण को आत्मा पैदा करती है पर कुछ का कहना है कि प्राण परमात्मा पैदा करता है। हरिकृष्ण दास

गोयंदका जी का कहना है आत्मा को जब शरीर मिलता है तब भगवान उसके साथ प्राण की रचना कर देते है ताकि आत्मा उस शरीर से कार्य करवाते करवाते अन्तिम यात्रा में आत्मा को प्रभु के पास या दूसरे शरीर में ले जाए।

1. सात ज्योतियाँ - सात कर्मेंद्रिया, दो आँखें, दो कान आदि इनमें जो शक्ति है वह अन्न के रस से प्रवाहित होती है।

2. तेज उदान है और यही आत्मा को दूसरी काया में लेकर जाता है।

चतुर्थ प्रश्न

:: 1.1 ::

सूर्यायणी ने पूछा-

जब कोई भी सोता है तब
कौन देवता सोया करते
कौन देवता उन में जागें
कौन स्वप्न द्रष्टा कहलाते।

:: 1.2 ::

गुरुवर यह भी समझाओ तुम
निद्रा में सुख किसको मिलता
सारे इन देवों को किस का
पूरा पूरा आश्रय रहता।

:: 2.1 ::

पिप्पलाद बोले-

जैसे सूरज के ढलने पर
सारी किरणें सिमटें उस पल
जब सूरज निकले तो सब दिक
दिव्य तेज फिर फैले निश्छल।

:: 2.2 ::

सकल करण निद्रा में जैसे-
सिमटें मन के अंदर आकर
तब आत्मा को कुछ ना दिखला
ना कुछ सुनता कानों अंदर

:: 2.3 ::

आत्मा तब ना कुछ भी सूंघे
स्वाद नहीं खाने का लेता
ना छूता तब ना कुछ बोले
ना ही मैथुन को वह करता।

:: 2.4 ::

ना कुछ लेता ना चलता तब
ना तब त्यागा करता यह मल
यह तो तब केवल सोता है
औ सोता ही सोता केवल।

:: 3.1 ::

काया नगरी में प्राणों की
पाँच अग्नियाँ[2] करतीं जागरण
गाहर्पत्य- अपान अग्न है
और व्यान है अन्वाहार्य-पचन।

:: 3.2 ::

गार्हपत्य से लेकर अग्नि
करते हैं आहवन[3] स्थापित

और इसी प्रणयन[4] के कारण
प्राण स्वरूपी यह परिभाषित।

:: 4.1 ::

श्वासों का लेना औ तजना
आहुतियाँ करना होता है
और इन्हें सारे अंगों तक
प्राण–'समान' स्वयं लाता है।

:: 4.2 ::

मन होता यजमान हवन में
प्राण 'उदान' कहाता है फल
और उदान नींद में मन को
ब्रह्म पुरी में देता सम्बल।

:: 5.1 ::

स्वप्न अवस्था में मन अपनी
महिमा को करता है अनुभव
जो कुछ पहले देखा होता
देख सके वह फिर हो सम्भव।

:: 5.2 ::

जिनको श्रवण किया हो उसने
उसको फिर फिर यह सुनता है
देश तथा देशान्तर के भी
फिर फिर यह दर्शन करता है।

:: 5.3 ::

जो देखा हो या ना देखा
जिसे सुना या सुन पाया ना
जो भी है या नहीं यहाँ पर
जो अनुभव में आया, या ना-

:: 5.4 ::

ऐसी सारी ही घटनाएँ
मन देखे सब, जब हो निद्रित
निद्रा की इन घटनाओं में
सारा कुछ यह देखे समुचित।

:: 6 ::

जब तेजोमय मन रहता है
सपना कोई तब ना दिखता
तब काया में जीवात्मा को
वास्तिवक निद्रा का सुख मिलता।

:: 7 ::

जैसे एक पेड़ पर आकर
सोते कितने ही पक्षीगण
सारे ही देवों[5] को वैसे
पूरा आश्रय देते भगवन।

:: 8.1 ::

पृथ्वी, अम्बर, तेज तथा जल
इनकी सारी तनमात्राएँ

वायु तथा जो स्पर्श करे यह
नेत्र तथा जो दृगगत आएँ

:: 8.2 ::

नाक कान जिह्वा अरु इनसे
जो सूँघें सुनते या खाते
दोनों हाथ तथा जो कुछ भी
इन हाथों से पकड़े जाते।

:: 8.3 ::

उपस्थ गुदा औ त्यागित मल
मन औ जो कुछ सोचे यह मन
दोनों ही पग, गन्तव्य जगह-
बुद्धि अवर चित का सब चिन्तन।

:: 8.4 ::

तेज तथा जिस पर यह पड़ता
अहं तथा यह जिसके कारण
ये सारे के सारे ही हैं
केवल ईश्वर आश्रित हर क्षण।

:: 9.1 ::

जीवात्मा ही द्रष्टा है औ
वह ही सब चीजों को छूता
वह ही सूँघे, वह ही सुनता
औ वह बौद्धा, सोचा करता।

:: 9.2 ::

विज्ञान स्वरूपी जीवात्मा
सारे ही कारज करता है
पर जीवात्मा परमात्मा के
आश्रय में हर पल रहता है।

:: 10.1 ::

बिन छाया के, बिन काया के
राग रंग बिन है परमात्मा
शुद्ध तथा उस अविनाशी को
जिसने जाना, उसकी आत्मा-

:: 10.2 ::

सारे ज्ञानों से ज्ञानित हो
ईश्वर में हो जाता है लय
निम्न लिखित जो ऋचा सुझाई
विषय यही उसमें हैं आए।

:: 11 ::

प्राण, भूत, सब करण तथा मन
ये सारे हैं ईश्वर आश्रित
मानव भी ईश्वर बन जाए
जब हो जाए उस से परिचित।

॥ इति चतुर्थ प्रश्न ॥

संदर्भ

1. पाँच अग्नियाँ- यह पाँच प्राणों का प्रतिनिधित्व करती है।

2. अन्वाहार्यपचन- एक अग्नि का नाम

3. आहवन- ऊपर उठनेवाली अग्नि को कहते हैं, मुख्य प्राण ही अहवनीय है।

4. प्रणयण- ऊपर उठा कर ले जाना

5. देव- पृथ्वी आदि तत्वों से लेकर, प्राण तक सारे तत्व

6. तन्मात्राएँ - i. पृथ्वी की तन्मात्रा- सूक्ष्म गंध, ii. जल की तन्मात्रा- रूप, iii. वायु की तन्मात्रा- स्पर्श, iv. आकाश की तन्मात्रा- शब्द, v. तेज की तन्मात्रा- रूप

पंचम प्रश्न

:: 1 ::

सत्यकाम ने पूछा-

हे सद्‌गुरुवर! जो नर ध्यावे
ओंकारेश्वर को जीवन भर
वह समुचित निज ध्यान क्रिया से
कौन लोक में जाता मर कर?

:: 2 ::

पिप्पलाद बोले -

पर औ अपर-ब्रह्म दोनों ही
सत्य काम! ओंकार कहाते
ज्ञानी इस का अवलम्बन कर
निज भावों सम कोई पाते।

:: 3.1 ::

एकल मात्रिक ॐ ध्यान कर
ज्ञानी फिर धरती पर आवे
श्रेष्ठ ऋचाओं के द्वारा वह
मानव तन को फिर से पावे।

:: 3.2 ::

ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर फिर
श्रद्धापूर्वक तप वह करता
इन शुभ कर्मों कारण उसको
अपरम सुख वैभव सब मिलता।

:: 4.1 ::

दो मात्राओं युत ध्याने से
मानव ऊपर ऊपर उठता
यजुर्वेद के मंत्रों से वह
सोम लोक में जाकर रुकता।

:: 4.2 ::

सोम लोक का सारा वैभव
उस ज्ञानी के आवे सम्मुख
पर जब वह सुख पूरा होवे
धरती पर आ भोगे सुख-दुख।

:: 5.1 ::

त्रैमासिक जो ध्यावे ॐ
सतत परम वह करता चिन्तन
तेज स्वरूपी ऐसा मानव
सूर्य लोक में लेता आसन।

:: 5.2 ::

साँप केंचुली अपनी जैसे
अपने तन से दूर हटाता

'साम' ऋचाओं द्वारा साधक
ब्रह्म-पुरे में निश्चित आता

:: 5.3 ::

काया वासी जीवात्मा वह
परम ब्रह्म में जा मिल जाता
सार रूप में अगले दोनों
मंत्रों में वर्णन है आता।

:: 6.1 ::

पृथक पृथक या युक्त रूप में
ध्येय नमित तीनों का चिन्तन
मार्त जगत से ना हो मुक्ति
फिर से मिलता कोई जीवन।

:: 6.2 ::

मध्य हिये में, भीतर, बाहर
जितने भी होते हैं कारज
जो यह माने सब ईश्वर कृत
वह विचलित ना होता विद्वज।

:: 7.1 ::

एकल मात्रा अवलम्बन से
आत्मा भोगे सुख धरती पर
दो आश्रित को, चंद्रलोक में
यर्जु मंत्र ले जाते ऊपर।

:: 7.2 ::

जब तीनों का अवलम्बन हो

साम[1] ऋचाएँ- लेकर जातीं

ब्रह्मलोक में, जिसमें जा फिर-

आत्माएँ वापिस ना आतीं।

:: 7.3 ::

ॐ[2] बनाकर अपना आश्रय

परम ब्रह्म पाएँ ज्ञानी जन

शान्त, अमर औ जरा रहित हों

निर्भय सर्वश्रेष्ठ वे सज्जन।

॥ इति पंचम प्रश्न ॥

संदर्भ

1. साम - गायन का वेद है, मरते समय संगीतमय वातावरण हो, ऐसे योगी ब्रह्मलोक में जाते हैं।
2. ॐ - बिना माया के है और निराकार है, नारायण है।

षष्ठ प्रश्न

:: 1.1 ::

भारद्वाज सुत सुकेश ऋषि ने
ऋषि पिप्पलाद से पूछा-
कौशल-देशी राजा का सुत
भगवन आया था मेरे घर
हिरण्य[1] कहाता था वह बेटा
पूछा उस ने यूँ घर आकर।

:: 1.2 ::

सोलह कला पूर्ण पुरुष जो
उसके बारे में समझाओ?
राजपुत्र! यह ज्ञान नहीं है
मैंने बोला अब तुम जाओ।

:: 1.3 ::

अगर समझ मुझको यह होती
मैं तुमको निश्चित समझाता
झूठ अगर बोलूँ तो झूठा
नष्ट स्वयं जड़ से हो जाता।

:: 1.4 ::

वह तो उत्तर सुनकर चुप हो
चला गया निज रथ को लेकर
उसी प्रश्न का उत्तर दे दो
पुरुष कहाँ है ऐसा गुरुवर।

:: 2 ::

ऋषि पिप्पलाद बोले-
सोलह कलापूर्ण पुरुष वह
जिसके बारे में तू कहता
सोम्य सुनो तुम वह इस जग में
हर मानव के हिय में रहता।

:: 3.1 ::

महासर्ग का पूर्व समय था
सोचा ऐस तब जगदीश्वर
जगत रचाना है अब मुझको
क्या डालूँ मैं इसके अंदर।

:: 3.2 ::

जो होवे जब इसके अंदर
मैं भी होऊँ इसमें अनुभव
वह निकले तो मैं भी इस से
निकल सकूँ यह होवे सम्भव।

:: 4.1 ::

ऐस सोचा तो उसने तब
सब से पहले प्राण रचाया

प्राण रचाकर उसने उसमें
श्रद्धा को लाकर प्रकटाया।

:: 4.2 ::

आकाश, अनिल, तेजस, जल, पृथ्वी
मन, करण, सकल क्रमशा लाए
अन्न, वीर्य, तप सबको रचकर
मंत्र, कर्म फिर ईश रचाए।

:: 4.3 ::

फिर जाकर उसने फल रूपी
लोक बनाए विविध यहाँ पर
और उन्हीं सारे लोकों को
नाम दिए विविधा परमेश्वर।

:: 5.1 ::

जैसे नदियाँ सागर तट तक
बहतीं औ उसमें जा मिलतीं
नाम रूप अपना सब त्यागें
सागर में मिल, सागर बनतीं

:: 5.2 ::

पूर्ण कलाएँ भी वैसे ही
सबका परमधाम परमेश्वर
नामरूप तज ईश्वर बनतीं
प्रलय समय में उसमें मिलकर।

:: 5.3 ::

कला रहित ही निश्चित रहता
पावन, अमृतमय वह भगवन
इसी विषय में निम्न मंत्र है
पुत्र सुनो अब उसका वर्णन।

:: 6.1 ::

रथ के पहियों की नाभी में
अरे लगे, जैसे रहते हैं
वे रथ का आधार कहाते
रथ उनके कारण चलते हैं।

:: 6.2 ::

प्राण, कलाएँ भी सारी ही
परमेश्वर के रहतीं आश्रित
केवल वही जानता है सब
जन्म-मरण से छुटकारे हित।

:: 7.1 ::

पिप्पलाद ने फिर उन सबसे
बात करी यूँ पूरी ऐसे
ईश ज्ञान था जितना मुझको
समझाया वह तुमको वैसे।

:: 7.2 ::

पिप्पलाद की पूजा करके
सब बोले, "हे तात हमारे"!

घोर अविद्या दूर भगाई

नमस्कार हम करते सारे।"

॥ इति षष्ठ प्रश्न ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषद् ॥

संदर्भ

1. हिरण्य- राज कुमार का नाम

2. प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रीय, मन, अन्न वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक तथा नाम से 16 कलाएँ हैं, पुरुष के 16 अंश हैं।

मुण्डकोपनिषद्

प्रार्थना । प्रश्नोपषद् वाली है

इस उपनिषद् के ऋषि बतलाते है कि संसार की रचना केवल परमेश्वर के द्वारा ही होती हैं। परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करना हो तो वह परा विद्या के द्वारा सम्भव है, इसी विद्या को ब्रह्मज्ञान कहते हैं।

जगत का ज्ञान अपरा विद्या से, जिसे अपरा ज्ञान भी कहते हैं, सम्भव है। परमेश्वर परा और अपरा दोनों का ज्ञाता है।

मुण्डक ऋषि के काल में वेदों को शायद कर्मकांड का ग्रन्थ समझा जाता होगा इसलिए ऋषि ने वेदों को अपरा ज्ञान के अंतर्गत रखा।

ईश्वर अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र है। उसका वर्ण नहीं है, हाथ पाँव नहीं है पर वह सर्वव्यापक है। संसार उसकी अभिव्यक्ति मात्र है। वह पृथ्वी, नभ, द्यौ, प्राण तथा मन में गुथकर रहता है।

मनुष्य के हृदय में उस का विशेष स्थान है, आत्मा भी यहीं रहता है। आत्मा उसे यहीं सहज रूप से प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर बुद्धि से नहीं ध्यान से हृदय में जाना जा सकता है।

आत्मा और परमात्मा दोनों हृदय में रहते हैं। आत्मा भोगों में लिप्त होकर रहता है पर ईश्वर द्रष्टा बनकर सब भोगों का अवलोकन करता है और अलिप्त रहता है।

भोगों में लिप्तता के कारण आत्मा पर संस्कारों का आवरण

रहता है इसलिए वह ईश्वर अनुभव नहीं करता। आवरण हटाने के लिए उसे ध्यान करना होगा, केवल उपदेशों को सुनकर या शास्त्रों को पढ़कर यह सम्भव नहीं।

:: मुण्डक - एक ::

खंड : 1

:: 1.1 ::

जगत रचेता जग के रक्षक
परम देव ब्रह्मा कहलाए
अन्य सभी देवें से पहले
ब्रह्मा ही जगती में आए।

:: 1.2 ::

प्रथम पुत्र अथर्व ऋषि को
ब्रह्मज्ञान समझाया सारा
ज्ञान यही है सब ज्ञानों का
ज्ञान दिया जो उसको न्यारा।

:: 2 ::

ज्ञान प्राप्तकर यह ब्रह्मा से
सारा 'अङ्गी' को समझाया
जिस ने 'सत्यवाह' अरू उसने
श्रेष्ठ 'अङ्गिरा' तक पहुंचाया।

:: 3.1 ::

एक महाशाला के कुलपति
विख्यात बहुत थे शौनक मुनिवर
अङ्गिरा निकट विधिवत[1] बोले-
ज्ञान मुझे दो तुम हे गुरुवर!

:: 3.2 ::

जिसका ज्ञानी बनकर मानव
सब ज्ञानों का होवे ज्ञाता
और उसे फिर पूरे जग में
कुछ भी ना अनजाना रहता।

:: 4 ::

अङ्गिरा ऋषि बोले-
ब्रह्मज्ञान की दो धाराएँ
ज्ञानी जन हमको समझाते
एक परा[2] है जानी जाती
दूजी अपरा[3] वे बतलाते।

:: 5.1 ::

श्रेष्ठ परा विद्या के द्वारा
सम्भव है हम जानें ईश्वर
जो किंचित भी क्षय ना होती
और सदा जो रहती अक्षर।

:: 5.2 ::

अपरा के अन्तर्गत आते
ऋक, यर्जु, साम अथर्ववेद

व्याकरण, शिखा, कल्प, निरुक्त
छंद तथा ज्योतिष सुवेद।

:: 6.1 ::

अदृश्य, अग्रह्य, अगोत्र तथा
परमेश्वर का वर्ण नहीं है
वह बिन हाथों पैरों उसके
कान, नयन, अरू करण नहीं है।

:: 6.2 ::

नित्य अवर वह सर्वव्यापक
अव्यय बतलाते ज्ञानीजन
वह सूक्षमतम सबमें फैला
सब भूतों का कारक, कारण।

:: 7.1 ::

मकड़ी अपना जाला बुनती
और उसे फिर खाती जैसे
नाना औषधियों को पृथ्वी
समय समय उपजाती वैसे।

:: 7.1 ::

केशों औ रोओं को जैसे
जीवित काया पैदा करती
वैसे ही अक्षर के द्वारा
हर वस्तु जीवन में आती।

:: 8 ::

प्रलय अनन्तर तप[4] से फैला

सारा जग यह ईश रचाता

सब से पहले इस क्रम में वह

सारे अन्नों[5] को उपजाता।

:: 8 ::

शौनक! फिर वह रचता क्रमशः

प्राण, मनस औ सत्य[6] यहां पर

सब[7] लोकों को, सब कर्मों को

औ नर के सुख-दुख की गागर

:: 9 ::

सर्वज्ञ अवर सर्वव्यापक-

ज्ञान स्वरूपी, तप वह करता

उस तप द्वारा जग औ इस में-

नाम रूप हर अन्न उपजता।

॥ इति प्रथम खंड ॥

संदर्भ

1. विधिवत- हाथ में समिधा लेकर श्रद्धा पूर्वक
2. परा- अभौतिक ज्ञान
3. अपरा- जो परा नहीं है (भौतिक ज्ञान का प्रतीक मान कर वेद को अपरा के अंतरगत लाया गया। मुंडक उपनिषद् के काल में यज्ञ याज्ञ का प्रचलन था इन के द्वारा सबको सुख की कामना पूरी होती थी।)

4. तप- संकल्प

5 सारे अन्न- सब प्रकार के खाद्य पदार्थ

6. सत्य- पंच महाभूत

7. सब लोक- हिरण्य इसे अपर ब्रह्म भी कहते हैं

नोट : शौनक ने प्रश्न किया था किस को जान कर सब कुछ ज्ञानित होता है। उत्तर स्पष्ट है - ईश्वर!

खंड : 2

:: 1.1 ::

जिन जिन यज्ञादिक कर्मों को
मंत्रों में ऋषियों ने गाया
तीनों वेदों में इन सबको
व्याख्यापूर्वक है समझाया।

:: 1.2 ::

सतत नियम से, हे सत् इच्छुक!
करना इन कर्मों का पालन
शुभ फल के हित इनसे बढ़कर
ओर नहीं है कोई साधन।

:: 2 ::

हवन अगन जब जल जाए औ-
ज्वालाएं यौवन पर आएँ
आज्य भाग[1], आहुतियाँ देकर
मध्य अग्न के डाली जाएँ।

:: 3.1 ::

जो जो भी याज्ञिक अपने सब
दर्श[2] पौर्ण[3] यज्ञों को त्यागें

चतुर्मास, आग्रण्य[4] त्याग दें
और अतिथि धर्म से भागें।

:: 3.2 ::

शास्त्रोचित सब यजन छोड़ दें
बलिवेशन भी जो ना करते
उनके सातों ही लोकों[5] के
सारे पुण्यों के फल मिटते।

:: 4.1 ::

जात वेद की सात जिह्वाएँ[6]
जिनमें काली अवर कराली[7]
मन सम चंचल मनोजवा[8] है
और सुलोहिता[9], जिस में लाली।

:: 4.2 ::

धूम्र वर्ण धुएँ वाली है
चिंगारों वाली स्फुलिंगनी[10]
आलौकिक-सी विश्वरुचि[11] है
इन सातों से शोभित अग्नि।

:: 5 ::

दीप्त अग्न में उचित समय पर
याज्ञिक देते जो आहुतियाँ
इनके फल हित इन्द्रपुरी में
ले जाती हैं सूर रशमियाँ।

:: 6 ::

देवलोक में जब आता है
सूरज की किरणों से याज्ञिक
वे उसके अंदर से बोलें
यह तेरा अर्जित फल साधक।

:: 7 ::

अष्टादश नावों[12] का बेड़ा
अदृढ़ है, फल गौण गौणतर
इनमें मोहित हो अज्ञानी
मरण जरा के खाते चक्कर।

:: 8 ::

घोर अविद्या रत रहते जो
पर अपने को समझें ज्ञानी
वे मूरख उस अंधे सम हैं
जिनके साथी अंधे प्राणी

:: 9.1 ::

बालिश होती उन सबकी 'धी'
जो कर्मों को करते फल हित
जब मिलता फल वे कामी जन
अपने ऊपर होते गर्वित।

:: 9.2 ::

पर पुण्यों के फल जब मिटते
अर्जित पुण्य-लोक छुट जाते

बहुत दुखित होकर वे कामी
नीचे जग में फिर फिर आते।

:: 10 ::

इष्ट पूर्त[13] ही श्रेष्ठ समझकर
जो मूरख यह पथ अपनाते
स्वर्गलोक में पुण्य भोग कर
हीन योनियों में फिर आते।

:: 11.1 ::

शान्त-मना, विद्वत जन जो भी
वन में रहते भिक्षा आश्रित
श्रद्धापूर्वक तप वे करते
औ जीवन को जीते समुचित।

:: 11.2 ::

वे बिन रज-गुण, सूरज मग से
जाते हैं उस ठोर जहाँ पर
जन्म-मरण ना कोई होता
नित्य, परम रहते जगदीश्वर।

:: 12.1 ::

फिर वे समझें किन कर्मों से
किन लोकों में मिलता जीवन
उनको यह भी अनुभव आता
अकृत[14] ना मिलता कृत कारण

:: 12.2 ::

ऐसे साधक वैरागी बन
विनय शीलता को अपनाते
अपने कर में समिधा लेकर
ब्रह्मनिष्ठ के दर पर जाते।

:: 13 ::

ऐसे शम, दम युत साधक को
तत्वज्ञान ज्ञानी समझाएँ
जिस कारण ऐसे सब साधक
अविनाशी परमेश्वर पाएँ।

॥ इति खंड दो ॥

संदर्भ

1. आज्य भाग- अग्नि और सोम्य को दी जाने वाली आहुतियाँ
2. दर्श- अमावस्या का यज्ञ
3. पौर्ण- पूर्णमासी का यज्ञ
4. आग्रण्य- शीतकाल में जो यज्ञ किया जाए।
5. सात लोक- सात पीढ़ी कुछ व्याख्याकार पृथ्वी, वायु, आकाश, आदिति, चंद्रमा, नक्षत्र एक ब्रह्मा को कहते हैं कुछ भू, भुवः, स्वः, जनः तथा सत्य को कहते हैं।
6. सात जिह्वाएँ- प्रकाश के सात रंग
7. कराली- जिसे देख कर डर लगता है
8. मनोजवा- मन के सम वेग वाला
9. सुलोहिता- लाल धुएँ वाली
10. स्फुलिंगनी- सब ओर अंगारे फैलाने वाली
11. विश्वरुचि- इसकी कांति भिन्न रूप वाली है।

12. अष्टादश नावें- यज्ञ के 18 प्रकार नित, दर्श, पौर्णमास, चर्तुमास आदि

13. इष्ट पूर्त- इष्ट की पूर्ति के लिए

14. अकृत- नित्य परमेश्वर कृत-कर्म से

(यहाँ कर्मकांडियों का मत है कि सूर्य की किरणें मनुष्य को सूर्यलोक में ले जाती हैं।)

मुंडक -2

खंड : एक

:: 1 ::

पावक की ज्वाला से जैसे

उस जैसे निकलें लाखों कण

वैसे अक्षर[1] से निकृत हों

उसमें लय हों जड़ औ चेतन।

:: 2 ::

दिव्य अमूर्त पुरुष अज[2] जग के

भीतर बाहर फैला, बिन मन

प्राण रहित है, शुभ्र[3] तथा है

अक्षर, सर्वश्रेष्ठ वह भगवन।

:: 3 ::

और नहीं ऐसा कोई जो

रचना प्राण, करण, मन करता

विश्व धारणी पृथ्वी, नभ, जल,

तेज तथा आशुग सब रचता।

:: 4 ::

चंदा सूरज इसकी आँखें
श्रोत्र[4], दिशाएँ, मस्तक, अग्नि
पृथ्वी, जग, आशुग अरु वेद
पद, हिय, प्राण तथा हैं वाणी।

:: 5.1 ::

परमेश्वर से प्रकटी अग्नि
रवि समिधा बन जलता हर पल
चाँद बनाया जिसके द्वारा
मेघ जगत में बरसाता जल।

:: 5.2 ::

औषध लाई वीर्य बनाया
जो नारी की कोख समाए
सकल चरा-चर रचना करके
चक्र जगत का ईश चलाए।

:: 6.1 ::

मंत्र, ऋचाएँ फिर प्रकटाईं
श्रुतियाँ सारी और यजन तब
दीक्षा[5] लाई और दक्षिणा
संवतसर की कालगणन सब।

:: 6.2 ::

फिर प्रकटाया यजमानों को
और लोक सारे के सारे

सूरज, चंदा की तप[6] शक्ति
आलौकित कर जिन्हें सवारे।

:: 7.1 ::

बहुत तरह के देव रचाए
औ साध्यों[7] के गण भी सारे
फिर मानुष, पशु और सकल ज़ग
जो लगते हैं न्यारे न्यारे।

:: 7.2 ::

प्राण, अपान, पवन रचना की
धान, कनक, जौं अन्न उगाए
तप, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, सत्य औ
सब यज्ञों के नियम बनाए।

:: 8.1 ::

सात प्राण[8] औ काली जैसी
सातों लपटों को प्रकटाया
विषयों की सातों समिधाएँ
सात रूप का यजन बनाया।

:: 8.2 ::

सात करण के द्वार रचाए
जिनमें प्राण विचरता हर पल
हिय कंदरा से संचालित ये
सातों सातों के सब संकल[9]।

:: 9 ::

सागर, पर्वत, नद, औषधियाँ
ईश्वर रचता रस सब परिचित
जिसके कारण सब भूतों में
आत्मा आकर होता स्थापित।

:: 10.1 ::

मानव जिन कर्मों को करते
रखते उनमें जो तप भक्ति
परम पुरुष पुरुषात्तम की वह
केवल होती है अभिव्यक्ति।

:: 10.2 ::

मानव के अंदर परमेश्वर
हिय कंदरा में सहज बैठता
जिस मानव ने ऐसा समझा
वह ही उसको उचित समझता।

॥ इति मुंडक-2, खंड-1 ॥

संदर्भ

1. अक्षर- ईश्वर जो क्षय नहीं होता।
2. अज- जन्म आदि विकार से रहित
3. शुभ्र- सफेद।
4. श्रोत्र - ईश्वर की दिशाएँ
5. दीक्षा- यज्ञ करते समय यजमान जो संकल्प लेता है
6. तप- सूर्य चंदा का निष्काम भाव से कर्म करना।

7. साध्य - वे मनुष्य जो ऊपर उठने का संकल्प कर यत्न करते हैं।

8. सात प्राण- 2 आँखों, 2 कानों, 2 नाक+मुख - 7 छिद्रों में बहने वाले प्राण।

9. संकल - समूह

मुण्डक : 2

खण्ड - 2

:: 1.1 ::

पास रहे वह सबसे ज्यादा
सबके हिय में रहता है स्थित
जोत परम वह, ज्योतित है वह
और गुहाचर से परिभाषित।

:: 1.2 ::

प्राणी जो भी चेष्टा करता
पलकों से झपकी भी लेता
सकल क्रियाएँ वे मानव की
असत अवर सत ईश्वर रचता।

:: 1.3 ::

वरणेय सदा, श्रेष्ठ परम वह
हो जाओ उससे तुम परिचित
पर बुद्धि से कोई उसको
जान नहीं सकता है किंचित।

:: **2.1** ::

दीप्त तथा वह सूक्षमतम है
क्षय ना होता, वह है अक्षर
सब लोकों औ सब जीवों में
वास सदा करता जगदीश्वर।

:: **2.2** ::

प्राण वही है, वह वाणी है
वह ही मन है और वही सत
लक्ष बनाकर बींधो उसको
सौम्य! उसे तुम, वह है अमृत।

:: **3.1** ::

उपनिषदों ने परमेश्वर को
प्रणव नाम से है पहचाना
उसको ही निज रक्षक समझो
धनुष बना करके तुम अपना।

:: **3.2** ::

शर रूपी अपनी आत्मा को
ईश्वर पूजा से कर तीक्षण
फिर ईश्वर को करके लक्षित
हे शोनक! उसका कर भेदन।

:: **4** ::

ॐ धनुष है, आत्मा शर है
प्राप्य लक्ष है, वह जगदीश्वर

वह भेदा जा सकता, मद तज
शर आत्मा में तन्मय होकर।

:: 5 ::

पृथ्वी, द्यौ, नभ, प्राण तथा मन
सब कुछ उस में गुथकर रहता
सब तज जानो परमेश्वर जो-
सेतुक[1] अमृत तक पहुँचाता।

:: 6.1 ::

रथ में जो है स्थान अरों का
काया में दिल वैसे स्थापित
मध्य स्थापित यह काया के
हर नाड़ी उस से संचालित।

:: 6.2 ::

बहु विधि प्रकटे ॐ जगत में
हर नर उसमें ध्यान लगाए
जो सारा ही तमस मिटाकर
भव सागर से पार कराए।

:: 7.1 ::

दिव्य तथा आनन्दमयी वह
ब्रह्म पुरे में रहता, शौनक
परम मनोमय महिमा उसकी
सर्वज्ञी वह सर्वव्यापक।

:: 7.2 ::

प्राण, मनोमय कोशों का वह
हृदय क्षेत्र से करता शासन
उसकी महिमा अनुभव होती
धीरज धारी औ ज्ञानी बन।

:: 8 ::

कार्य तथा कारण की बातें
समझ जिसे सारी आ जातीं
उस के हिय की गांठें खुलतीं
जो कर्मों से मुक्त करातीं।

:: 9 ::

बिन अव्यय, निर्मल परमेश्वर
शुद्ध तथा ज्योतित से ज्योतित
परम धाम का वह वासी है
ज्ञानी ही हो उससे परिचित।

:: 10.1 ::

सूरज चंदा तारे बिजली
उस दर पर कोई ना चमके
फिर आशुग का तेज दिखे क्या?
हे शौनक! यूँ बिन ईश्वर के?

:: 10.2 ::

इन सबमें जो तेज भरा है
वह सब है उसके होने पर

जो भी ये आलोक छिटकते

उसका भी कारण जगदीश्वर।

:: 11 ::

आगे पीछे दाएँ-बाएँ

ऊपर नीचे जो है विस्तृत

वह ईश्वर है, सर्वश्रेष्ठ है।

सब उससे हो जाओ परिचित।

।इति मुंडक- 2, खंड-2 ॥

संदर्भ

(ॐ ईश्वर का धनुष है और ईश्वर की प्राप्ति हमारा लक्ष्य)

1. सेतुक- सेतु

मुण्डक - तीन
खंड - एक

:: 1 ::

एक वृक्ष है दो साथी खग-
उस पर रहते रात अवर दिन
एक करे उस के फल सेवन
पर, दूजा केवल अवलोकन

:: 2.1 ::

माया रूपी फल चख आत्मा
माया में पूरा रम जाए
अपनी इस दुर्बलता कारण
वह केवल दुख ही दुख पाए।

:: 2.2 ::

पर अपने से भिन्न परम की
जब आत्मा पहचाने महिमा
तब ईश्वर की अनुकम्पा से
शोक रहित हो उस की आत्मा।

:: 3.1 ::

ब्रह्मा ने जग की रचना की
वह ब्रह्मा का भी रचना-कर

दिव्य स्वरूपी परम पुरुष वह
वह ही सबका शासक ईश्वर।

:: 3.2 ::

जो उसको अनुभव कर लेता
पापों पुण्यों से छुट जाता
वह ज्ञानी यूं निर्मल हो कर
सर्वोत्तम सी पाए समता।

:: 4.1 ::

प्राण भूत सब भासित करता
जो यह अनुभव करता ज्ञानी
यौग्य कर्म वह फिर करता सब
अतिवादी ना होता प्राणी।

:: 4.2 ::

ऐसा ज्ञानी आत्मा में ही
क्रीड़ा करता रहता रमकर
ब्रह्म ज्ञानियों से भी ज्यादा
वह ज्ञानी होता है बढ़कर।

:: 5 ::

ब्रह्मचर्ययुत, दोष रहित औ
सच्चा हिय हो, तपमय जीवन
तब ज्ञानी को शुभ कर्मों से
उस ज्योतित के होते दर्शन।

:: 6.1 ::

सत्य सदा जीता करता है
और झूठ निश्चित ही हारे
सत्य बना कर नैया अपनी
मानव पहुँचे ईश्वर द्वारे।

:: 6.2 ::

देवयान मग सच का मग है
ऋषि भ्रमण करते हैं जिसमें
परम धाम तक पहुँचाता वह
सत्येश्वर हैं रहते जिस में।

:: 7 ::

परम अचिन्त्य, दिव्य, वृहत औ
ईश्वर सूक्षम से सूक्षमतर
दूर बहुत है और निकटतम
वह रहता है हिय में आकर।

:: 8.1 ::

प्राप्त करें ना उसको आंखें
ना वाणी, ना अन्य करण सब
तप द्वारा भी वह ना मिलता
ना मिलता कर्मों कारण जब-

:: 8.2 ::

उस अव्यय को पाना है तो
निर्मल कर लो, निज अन्तर मन

ज्ञान सहारे ध्यान लगाओ
तब पाओगे तुम वह भगवन।

:: 9.1 ::

पाँच तरह के प्राण सदा ही
काया में रहते चेष्टायुत
इस काया में ही रहता है
सूक्षमतम जीवात्मा स्थापित।

:: 9.2 ::

मन द्वारा आत्मा का दर्शन
सम्भव है नैसर्गिक परिमल
पर यह सम्भव होता, जब हो-
प्राणों का मल, मन से निर्मल।

:: 10.1 ::

पावन मन वाले मानुष सब
जिन लोकों का करते चिन्तन
वे मानुष उन लोकों को पा
करते उनका इच्छित भोगन।

:: 10.2 ::

जिसकी भी यह इच्छा होती
सच्चा सुखमय होवे जीना
आत्मिक ज्ञानी गुरु सेवा से
पूरा कर पाएगा सपना।

॥ इति मुण्डक-3, खंड-एक ॥

मुण्डक : तीन

खण्ड : दो

:: 1.1 ::

परम शुभ्र है वह निष्कामी
वह ही सारे जग का धारक
उसको वह ही जाने जो हो
निष्कामी, निर्मल-मन साधक।

:: 1.2 ::

श्रद्धापूर्वक ऐसा साधक
करता नित ईश्वर का पूजन
रजोवीर्यमय काया तज कर
फिर फिर ना वह पाए जीवन।

:: 2.1 ::

भोगों को जो आदर देते
वे भोगों की इच्छा कारण
भोग जिधर पूरे हो सकते
उन उन स्थानों पर लें जीवन।

:: 2.2 ::

पूर्ण कामनाएँ हैं जिसकी
जो सब भोगों से उकताए
उसकी सकल कामनाएँ फिर
काया में ही, हो जाती लय।

:: 3.1 ::

केवल उपदेशों को दे, सुन
कोई भी ना पाए ईश्वर
केवल धी धारी ज्ञानी बन
पहुँच सके ना, उसके दर पर।

:: 3.2 ::

ईश्वर खुद ही उसको चुनता
वह अपने को प्रकटे जिस पर
पर कोई ही ऐसा होता
जो नित रहता उस पर निर्भर।

:: 4.1 ::

निर्बल और प्रमादी नर को
कभी नहीं हो ईश्वर दर्शित
ऐसा नर भी ना पाए वह
जो ना सात्विक और असंयित।

:: 4.2 ::

उसके दर पर पहुँचे केवल
जो नर कर्मों में रत रहता

औ करता वह उन कर्मों को
जिनमें हो पूरी सात्विकता।

:: 5 ::

राग, द्वेष तज शांत रहे जो
ज्ञान तृप्त हो ज्ञानी बनकर
प्रप्त करे वह निश्चित ईश्वर
शान्त बने उसमें लय होकर।

:: 6 ::

उपनिषद् कहें ज्ञानी साधक
सन्यासी बनकर हो पावन
ब्रह्मलोक में मरकर जाए
अमृतपद को करके धारण।

:: 7 ::

उस की दश औ पाँच कलाएँ
और करण हों देवों में लय
करण तथा आत्मा उसकी तब
हो जाती हैं परमेश्वरमय।

:: 8. ::

नाम रूप तज बहती नदिया
सागर में मिल बनती सागर
दिव्य परम में नाम रूप तज
ज्ञानी भी बन जाता ईश्वर।

:: 9 ::

जो जाने 'वह' ब्रह्म बने वह
सारे दुख तापों से छुटता
दिल की गाँठें खोल अमर हो
अज्ञानी ना कुल में रहता।

:: 10 ::

ब्रह्मज्ञान अधिकारी बनता
जो श्रद्धा से ईश्वर निष्ठित
शिरोव्रती[1] निष्कामी ज्ञानी
हवन यज्ञ नित करता विधिवत।

:: 11.1 ::

पूर्व समय में पूर्ण सत्य यह
स्वयं 'अङ्गिरा' किया उजागर
अब्रह्मचारी वेद पढ़े ना
जो हैं सब ज्ञानों का सागर।

:: 11.2 ::

जितने भी ऋषियों ने जग में
ज्ञान किया संवर्दन शौनक
नमन योग्य उन सब ऋषियों को
नमन करें हम श्रद्धापूर्वक
नमन करें हम श्रद्धापूर्वक-
नमन करें हम श्रद्धापूर्वक।

॥ इति मुण्डक-3, खंड-2 ॥

संदर्भ

1. शिरोव्रती- सन्यास लेकर सिर का मुंडन करवाने वाला। कलाएँ और इन्द्रियाँ मरने पर अपने-अपने देवता में स्थापित हो जाती हैं।

माण्डूक्योपनिषद्

इस उपनिषद् का ऋषि सब कुछ ॐ को मानता है। वह आत्मा परमात्मा को ॐ मानता है, ॐ पर ध्यान करने की प्रेरणा देता है क्योंकि ॐ की ध्वनि सूक्षमतम है। आत्मा का सगुण रूप शरीर और परमात्मा का सगुण रूप संसार है।

ऋषि ॐ के चार पदों का वर्णन करता है- अ, उ, म, अमात्रिक। चार पदों को आत्मा के जाग्रत, सुप्त, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओं में ढालकर समझाता है।

ऋषि चार पदों की व्याख्या भी करता है। जाग्रत अवस्था में मनुष्य सब कार्य करता है। सुप्त अवस्था में आत्मा अन्तर्मुख हो जाता है। सूक्ष्म इन्द्रियों से बिना खाए खाता है, बिना देखे देखता है। सुषुप्ति में आत्मा शरीर से अपनी अनुभूति त्याग देता है और आनन्द का अनुभव करता है, आत्मा कोई कार्य नहीं करता सारी शक्तियाँ एक केंद्र पर केंद्रित करके ज्ञान की घनी अवस्था में रहता है। होश आने पर उसे बहुत आनंद आता है।

ब्रह्म की जाग्रत अवस्था में ब्रह्म संसार की रचना करता है। सुप्त अवस्था में ब्रह्म कारण रूप सृष्टि में कार्य करता है। सुषुप्ति में ब्रह्म बिना रचना किए रचना करने का आनन्द लेता है। तब वह हिरण्य-गर्भ रूप में होता है, तेजोमय होता है, प्रज्ञान-धन होता है, वह ब्रह्म का तीसरा पाद होता है।

उपनिषद्कार ऋषि यह कहता है कि सर्वेश्वर वह है जो इन तीन जाग्रत, सुप्त, सुषुप्ति अवस्थाओं में रहे। वही सर्वज्ञ है, वही जाग्रत रह सब मूलों की उत्पत्ति करता है, वही प्रलय भी करता है, यह ब्रह्म का सगुण रूप है। इन तीन रूपों से अन्य आत्मा तथा भगवान का एक

निर्गुण रूप है। वह चतुर्थ पाद है, वह हमारे ज्ञान की सीमा में नहीं आता।

माण्डूक्योपनिषद्

:: 1.1 ::

ॐ सकल जग में फैला है
जगत ॐ का ही व्याख्याता
भूत, भविष्यत वर्तमान युत
सारा जग ही ॐ कहाता।

:: 1.2 ::

इन तीनों से अन्य कहीं पर
जिन कालों का होवे वर्णन
वे सारे भी ओंकेश्वर हैं
अन्य उचित ना है अवधारण।

:: 2 ::

सारा जग है ब्रह्म स्वरूपी
और ब्रह्म आत्मा कहलाता
सकल जगत इसकी काया है
चार पदी[1] यह[2] जाना जाता।

:: 3 ::

बाह्य, स्थूल विश्व का स्वामी[3]
जब जग रचता जागृत रह कर

सप्तांगी[4] उन्नीस[5] मुखी यह
प्रथम चरण में है वैश्वानर[6]।

:: 4 ::

कार्य क्षेत्र जब सपने बनते
सूक्षम जग में यह हो स्थापित
सप्तांगी उन्नीस-मुखी का
तेजस[7] दूजा पद परिभाषित

:: 5.1 ::

जब कोई नर सो सा जाता
भोगों की ना रहती इच्छा
बिन सपनों के यह होती है
सुषुप्त कारण-प्रलय अवस्था

:: 5.2 ::

आत्मा, ईश्वर चेतोमुख[8] हो
सुख से जब आनन्द मनाते
इस तीजे पद में तब दोनों
एकाग्र प्राज्ञ बनकर रहते।

:: 6.1 ::

सर्वज्ञ अवर वह अन्तरयामी
परम ब्रह्म है जग का कारक
सबका उत्पादक पालक वह
औ सबका है वह संहारक

:: 6.2 ::

तीन पदों में रहने वाला
सगुण कहाता है परमात्मा
ऐसे ही तीनों पद धारी
सगुण कहा जाता जीवात्मा।

:: 7.1 ::

जब ना अन्तर ना बाही मुख
ना यह उभयमुखी[9] बन रहता
ना कुछ जाने ना अनजाना
प्रज्ञान[10]-धन अदृष्ट कहाता

:: 7.2 ::

व्यवहार करे ना तब यह कोई
और नहीं तब पकड़ा जाए
ना लक्षण हो ना चिन्तन हो
ना ही व्याख्या में यह आए।

:: 7.3 ::

तब हो उसकी तूर्य अवस्था
तब कुछ भी ना अद्‌भुत घटता
शान्त अवर वह शिव होता तब
द्वैत नहीं इस में कुछ रहता।

:: 7.4 ::

चार पदों का जो वर्णन था
चौथे पद का यह है चिन्तन

ज्ञान-योग्य यह कहलाता तब
(ज्ञान हमें हो यह सब पावन)

:: 8 ::

अक्षर मात्राओं में सोचें
परमात्मा ही है ओंकार
तीन पदों हित त्रै मात्राएं
अकार, उकार और मकार।

:: 9.1 ::

प्रथम अकार नाम की मात्रा
सब शब्दों में रहती मिलकर
जैसे काया अंदर आत्मा
औ जाग्रत जग में वैश्वानर।

:: 9.2 ::

जो भी ज्ञानी इसको ऐसे
पूर्ण रूप में समझा करता
सब भोगों को पाए, भोगे
सर्व-मान्य वह मानुज बनता।

:: 10.1 ::

दूजी मात्रा है उत्कर्षक[11]
उभय[12] स्वरूपी है इस कारण
सपनों जैसी सूक्ष्म है यह
'तेजस' नाम किया है धारण।

:: 10.2 ::

जो इस को जानेगा ऐसे
वह अच्छा ज्ञानी हो जाता
उस सम-भावी के कुल में फिर
ब्रह्म विमुख ना कोई रहता।

:: 11.1 ::

तीजी मात्रा होती है 'म'
माप तोल जो करती सारे
लोपकरे वह दोनों 'अ' 'उ'
अतः सुषुप्त अवस्था धारे।

:: 11.2 ::

प्राज्ञ कही जाती इस कारण
औ जो इस का होता ज्ञानी
माप तोल कर सारे जग को
लय अपने में करता प्राणी।

:: 12.1 ::

बिन मात्राओं के ओंकर
अव्यवहारी[13] निर्गुण सम है
कोई भी परपंच रचे न
यह शिव है औ यह अनुपम है।

:: 12.2 ::

यह चौथा है चरण अमात्रिक
जो इसको समझेगा ऐसे

आत्मा उसका ईश्वर में मिल
बन जाएगा वह भी वैसे।

॥ इति माण्डूक्योपनिषद्॥

संदर्भ

1. चार पदी- ईश्वर के चार पाद- ईश, ज्ञान के चार विभाग
2. यह आत्मा (परमात्मा)
3. स्वामी- आत्मा, परमात्मा दोनों के लिए
4. सप्तांगी- सिर पैर, आँखें, कान, वाणी, हृदय फेफड़े (सब)
5. उन्नीस मुखी- 10 इंद्रियां + 5 प्राण + 4 अन्तःकरण
6. वैश्वानर - विश्व को धारण करने वाला- ईश्वर
7. तेजस- जो सपनों में काम करता है
8. चेतो मुख- प्रकाश ही जिस का मुख हो
9. उभय मुखी। दोनों ओर प्रज्ञा वाला
10. प्रज्ञान धन- अति ज्ञान वाला
11. उत्कर्षक- उत्कृष
12. उभय स्वरूपी- इस के दो पक्ष हैं अ के बाद आती है और म से पहले। दोनों इसका आदर करते है
13. अव्यवहारी- ओंकर, मन, वाणी आदि का विषय नहीं इसलिए व्यवहार में नहीं आता।

ऐतरेयोपनिषद्

इस उपनिषद् में ऋषि सृष्टि रचना कैसे हुई, बतलाते हैं। ऋषि बतलाते हैं कि परमात्मा में संसार को रचने की इच्छा हुई। इसके लिए उन्होंने लोकों को बनाया। इन लोकों में चंद्र, सूरज, नक्षत्र, पृथ्वी, जल, वायु अदि सब लोक आ जाते हैं।

लोक बनाने के उपरांत ईश्वर ने लोकों के पालकों को बनाया ताकि सब व्यवस्थाएं हो सकें।

ये सब बन जाने के उपरांत ईश्वर ने एक विराट पुरुष की रचना की जिसने एक अंडे को जल में पैदा किया। उसी अंडे से क्रमशः इन्द्रियाँ, इनको धारण करने वाले जीव तथा मनुष्य बनाए। फिर भूख, प्यास और खाने के लिए अन्न पैदा किए। फिर इस पिंड में आत्मा को बैठाया।

मनुष्यों की रचना में वीर्य का प्रावधान किया, जिसे पहले पिता अपने शरीर में धारण करता है और फिर माता में प्रेषित होता है, तब नए जीवन का उदय होता है।

जीव माँ के गर्भ में ही सब संस्कारों को धारण करता है। ऋषि बतलाते हैं कि वामदेव जी ने माँ के गर्भ में ही जीवन की पूर्णता प्राप्त की और जन्म के साथ ही ब्रह्मलीन हो गए।

प्रथम अध्याय

खंड-1

:: 1.1 ::

आदि समय में इस जगती में
मात्र एक परमेश्वर ही था
चेष्टा करने वाला तब तो
इस जगती में ओर नहीं था।

:: 1.2 ::

उस बेला में परमेश्वर ने
किया स्वयं ही ऐसा चिन्तन
नाना लोकों को मैं रचकर-
रचना कर दूं इनमें जीवन।

:: 2.1 ::

सबसे पहले सब से ऊपर
अम्भ लोक[1] की, रचना की तब
अंतरिक्ष औ फिर यह पृथ्वी
जो मर[2] से जानी जाती अब।

:: 2.2 ::

फिर पृथ्वी के नीचे उसने
आप[3] नाम का लोक बनाया
ऐसे ही परमेश्वर ने सब-
लोकों का उद्यान सजाया

:: 3 ::

लोक बनाए तो लोकों के
पालक भी हों, चिन्तन आया
जल आदिक भूतों से उसने
अमूर्छित तब पुरुष सजाया।

:: 4.1 ::

ज्यातिर्मय वह पुरुष[4] लक्षकर
तप[5] करने को बैठे ईश्वर
एक छेद वाला अंडा तब
प्रकटाया उससे जगदीश्वर।

:: 4.2 ::

उसी छेद के अंदर में से
वाणी रूपी करण बनाई
जिसके भीतर से ही तब फिर
परमेश्वर ने अग्न रचाई।

:: 4.3 ::

दोनों नासाओं को रचकर
प्राण किया उसमें संचालन

प्राण यही है जिसके द्वारा
आशुग ने है पाया जीवन।

:: 4.4 ::

फिर आंखों के छेद बनाए
जिनसे नयनों को प्रक्टा कर
नयन करण की रचना की औ
जिसके कारण चमका भास्कर।

:: 4.5 ::

कानों के दोनों छिद्रों से
कान बनाए श्रवण क्रिया हित
सकल दिशाएं त्वचा तथा फिर
रोम बनाए (तन रक्षा हित।)

:: 4.6 ::

औषध और वनस्पतियों हित
हर रोएं में छिद्र लगाया
फिर हिय, फिर मन औ फिर उससे
नभ के अंदर चांद सजाया।

:: 4.7 ::

नाभी अवर अपान बनाकर
मृत्यु देवता को तब लाया
लिंग बनाकर वीर्य बनाकर
उससे जल, फिर पुरुष बनाया।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

संदर्भ

1. अम्भ - अंतरिक्ष से ऊपर द्यौ लोकं आकाश
2. मर - पृथ्वी
3. आप - जल
4. ज्योतिर्मय पुरुष - हिरण्य गर्भ
5. तप - परिश्रम

प्रथम अध्याय

खंड-2

:: 1.1 ::

अग्नि देव सम देव ईश ने
छोड़े भव सागर के भीतर
भूखे प्यासे बहु दिखते वे
बोले सारे व्यकुल होकर।

:: 1.2 ::

हे ईश्वर! हम भूखे प्यासे
दुखित बहुत हैं सब इस कारण
एक जगह की रचना कर दो
अन्न ग्रहण का जो हो साधन।

:: 2.1 ::

परमेश्वर ने उनका दुख सुन
लाया औ दिखलाया 'गौ' तन
देवों ने देखा तो बोले
उचित नहीं है यह तन भगवन।

:: 2.2 ::

फिर घोड़े की काया लाई
देवों को करवाया दर्शन
देवों ने देखा तो बोले
उचित नहीं है यह भी भगवन

:: 3 ::

फिर मानव का रूप सजाया
सारे बोले यह अति सुंदर
ईश्वर बोले तुम सब इसके
निज अंगों में बैठो जा कर

:: 4.1 ::

अग्न वाक बन मुख में आई
वायु प्राण बन नाक समाई
सूरज ने नेत्रों में आकर
अपनी सुंदर जोत जगाई।

:: 4.2 ::

दिशा देवता श्रोत्र बने औ
दोनों कानों में वह आए
सारी औषध, वृक्ष मात्र सब
रोएं बनकर त्वचा समाए।

:: 4.3 ::

चंदा हियं में, मन बन बैठा
मृत्यु अपान बनी नाभी में

वरुण देवता वीर्य बना औ
लिंग निष्ठ वह वीर्य सभी में।

:: 4.4 ::

भूख प्यास ईश्वर से बोले
हमको भी वह जगह बता दो
जहां रहें हम दोनों मिलकर
देव हमें वह दर दिखला दो।

:: 4.5 ::

ऐसा सुनकर ईश्वर बोले-
मैं तुमको इनमें बिठलाता
हवन मिलेगा जो भी इनको
उस में भागीदार बनाता।

॥ इति खंड-2 ॥

प्रथम अध्याय

खंड - 3

:: 1 ::

परमेश्वर ने यूं सोचा तब
लोक रचे हैं लोकपाल सब
भूख, प्यास सब की मिट जाए
अन्न उगाऊँ भू पर मैं अब।

:: 2 ::

ईश तपाया जल तब इतना
पांचों भूत तपे जिस कारण
प्रतिभा प्रकटी उन भूतों से
अन्न वही बन करती पालन

:: 3.1 ::

पुरुष विमुखता कारण अन्न
दौड़ लगाने को था उद्यत
मानव ने सोचा पकड़ूं यह
वाणी द्वारा करके बाधित।

:: 3.2 ::

अन्न पकड़ ना पाई वाणी
पर जो उसको पकड़ा होता
अन्न उचारण कर वाणी से
'उदर' सभी लोगों का भरता

:: 4 ::

मानव ने फिर प्राण लगाया
अन्न पकड़ ना पाया प्राण
अगर प्राण से पकड़ा जाता
'उदर' सूंघ भरते इनसान।

:: 5 ::

तब कोशिश की आंखों द्वारा
वे हारीं ना मिली सफलता
आंखों से पकड़ा जाता तो
देख उदर पूरित ही रहता।

:: 6 ::

कानों द्वारा कोशिश की तो
दोनों हारे ये बेचारे
कानों से जो पकड़ा जाता
सुनकर अन्न उदर भर जाते।

:: 7 ::

कोशिश में फिर त्वचा लगाई
पकड़ नहीं फिर भी पाया नर

अगर अन्न यूं पकड़ा जाता

उदर सभी नर भरते छू कर।

:: 8 ::

मन के द्वारा भी कोशिश की

पकड़ नहीं उसको पाया मन

अन्न पकड़ जो मन के आता

उदर भरा जाता कर चिन्तन

:: 9 ::

उपस्थ द्वारा भी कोशिश की

वह भी सफल नहीं हो हारा

अगर पकड़ता, मिलती तृप्ति

अन्न त्याग करने के द्वारा।

:: 10 ::

तब अपान वायु से मुख से

अन्न पकड़कर मानव जीता

यही अपान अन्न को धारे

मानव का रक्षक कहलाता।

:: 11.1 ::

ईश्वर ने सोचा उसके बिन

ना रह पाएगा वह मानव

वह उसके अंदर आए अब-

करना होगा यह भी सम्भव।

:: 11.2 ::

वाणी से जब नर बोलेगा
प्राण, नाक द्वारा सूंघेगा
कान सुनें, आंखें देखेंगी
चमड़ी द्वारा स्पर्श करेगा

:: 11.3 ::

मन से मनन अपान क्रिया से-
अन्न उदर में पच जाएगा
उपस्थ मूत्र, वीर्य छोड़ेगा
मुझ बिन कुछ ना कर पाएगा।

:: 11.4 ::

जब यह सब कुछ मेरे बिन ही
मानव सम्भव कर पाएगा
तब उसके हित मेरा तो फिर
कोई ना उपयोग रहेगा।

:: 11.5 ::

उसने सोचा कैसे किस मग
मैं मानव के अंदर जाऊँ
पांवों का मग लेकर जाऊँ
या मैं शिर का मग अपनाऊँ

:: 12.1 ::

फिर ईश्वर ने काटा शिर को
छेद किया औ अंदर आया

सब शास्त्रों ने इसी छेद को
ब्रह्म रंध्र कहकर समझाया

:: 12.2 ::

तीन जगह ईश्वर दर्शन हों
जिनमें रहता ईश्वर स्थापित
परम धाम में, हिय में औ वह
जग में चारों दिक है व्यापित।

:: 13 ::

मानुष रूपी ने चारों दिक
देखी विस्मित भौतिक काया
कौन यहां है जिसके द्वारा
रूप जगत ने ऐसा पाया।

:: 14 ::

श्रुति! 'इदन्द्र[1]' कहें वे मानव
जिसने जान लिया हो भगवन
देव परोक्षी बातें करते
इन्द्र उसे[2] बोलें इस कारण।

॥ इति अध्याय-1 खंड-3 ॥

संदर्भ

1. इदन्द्र - मैंने ईश्वर को जान लिया
2. उसे - ईश्वर को

द्वितीय अध्याय

:: 1 ::

मानव रूपी अंगों में ही
वीर्य प्रथमता है गरमाता
सारे अंगों से उत्पादित
यह ही तेजस जाना जाता।

:: 1.2 ::

नर में आ जाने पर फिर यह
नारी में होता आरोपित
नारी में आरोपित होना
प्रथम जन्म उसका उद्घोषित।

:: 2 ::

माता के तन में यह आकर
माता का ही तन बन रहता
वह उस को पोषित करती है
यह ना कोई दुख पहुंचाता।

:: 3.1 ::

प्रसव समय तक माता उसको

रखती तन के अंदर अपने
जन्म अनन्तर पिता निभाता
जातकर्म जो होते जितने।

:: 3.2 ::

बालक के जनने से पहले
मात-पिता सोचें वे साधन-
जिससे बालक के भावों का
जन्म पूर्व होवे सद्पालन।

:: 3.3 ::

वे लोकों की कर यूं प्रगति
अपनी ही करते हैं सेवा
दूजा इसका जन्म यही है
संतानें ही असली मेवा।

:: 4.1 ::

वह बेटा सब शुभ कार्यों में
मानव का होता अधिकारी
और पिता जीवन की यात्रा
पूरी करके अपनी सारी।

:: 4.2 ::

नई किसी माता के तन में
फिर वह आकर लेता जीवन
यह उसका फिर जीवन लेना
जन्म हुआ तीजा इस कारण।

:: 5.1 ::

वाम देव जी ब्रह्म ऋषि थे
मात उदर में किया यह घोषित
मां के तन अंदर ही मैं हूं
ब्रह्मज्ञान बिद्या से पूरित।

:: 5.2 ::

करण रूप अपने देवों के
कितने ही जन्मों का जीना
देखा, समझा तन मरता है
आत्मा का ना होता मरना।

:: 5.3 ::

यह अनुभव होने से पहले
मुझको तब ऐसा लगता था
शत-शत लोहे के पिंजरों से
मैं (आत्मा)! बांधा रहता था।

:: 5.4 ::

अब पिंजरों का ना बन्धन है
ज्ञान स्वरूपी बल के बल पर
बाज बना सा अब उड़ता हूं
मैं यह भौतिक काया तज कर

:: 6 ::

वाम देव ने जब छोड़ा तन
परम धाम जा पहुंचे ऊपर

इच्छा कोई न बाकी थी
अमृत में मिल अमृत होकर।

॥ इति अध्याय-2 ॥

तृतीय अध्याय

:: 1.1 ::

मन में संशय के कारण ही
(पूछें कुछ यह तात्विक सज्जन)
कौन जगत में यह आत्मा है?
जिसका हम करते हैं पूजन।

:: 1.2 ::

जिस आत्मा के द्वारा जग में
देख सकें यह होता सम्भव
लोगों का सुनना होता है
औ गंधों को सूंघे मानव।

:: 1.3 ::

जिसके द्वारा वाणी बोले
या जिससे नर स्वाद चटकता
निरस्वादी जो कुछ भी होता-
दूर अलग अपने से रखता।

:: 1.4 ::

अब तक जो समझाया उसमें

दो आत्माओं का वर्णन है
कौन पूज्य है इन दोनों में?
संशय केवल इस कारण है।

:: 2.1 ::

भान हुआ यह तात्विक जन को
केवल हिय है और यही मन
जिसकी शक्ति से सब समझें
औ आज्ञाएं करते पालन।

:: 2.2 ::

वैज्ञानिक विशलेषण यह है
तुरंत ज्ञान मिलता इस कारण
देखें औ अनुभव हो इससे
और धैर्य हो इससे धारण

:: 2.3 ::

धी भी करती इससे निश्चय
मनन क्रियाएं इससे चलतीं
संकल्प मनोरथ प्राण समर्पण
काम, भोग, इच्छाएं जगतीं।

:: 2.4 ::

मन की सारी क्रमकाएं ये
ज्ञान स्वरूपी का वर्णन हैं
बौध कराती ये उसका ही
औ ये सब उसके लक्षण हैं।

:: 3.1 ::

ज्ञान हुआ तब जब, यह ऐसा
करना है ईश्वर ही पूजन
ईश इन्द्र है, औ ब्रह्मा है
और यही है सबका कारण।

:: 3.2 ::

जग में जितने भी मिलते हैं
देव परम पावन कल्याणी
भूत सकल पृथ्वी, जल, वायु
तेज, आकाश, क्षुद्रतम प्राणी

:: 3.3 ::

बीज रूप अंडों से उत्पन्न
स्वाद जगत में जिनका कारण
हाथी, घोड़े, गौएं, नर या
धरती फोड़ करें तन धारण।

:: 3.4 ::

सारे स्थावर, सारे जंगम
या जो पंखों द्वारा उड़ते
प्राज्ञ स्वरूपी से पा शक्ति
सारे अपने कारज करते।

:: 3.5 ::

प्राज्ञ-स्वरूपी में स्थित सारी-
ज्ञानमयी है जगती पावन

और यही प्रज्ञान जगत में
जानी जाती है श्री भगवन।

:: 3.5 ::

ब्रह्म प्राप्तकर ज्ञानी जग से-
परम धाम में पहुंचें जाकर
भोग मिलें सब, अमर बनें वे
परमेश्वर के दर पर जाकर।

॥ इति अध्याय तीन ॥

॥ इति ऐतरेयोनपिषद् ॥

तैत्तिरीयोपिषद्

इस उपनिषद् में तीन अध्याय (तीन वल्लियां) हैं।

पहली वल्ली : इसका विषय 'ज्ञान' है। इसलिए इसे शिक्षा वल्ली कहते हैं।

दूसरी वल्ली : इसमें ब्रह्म का विषय समझाया गया है। इसे ब्रह्मानंद वल्ली का नाम दिया गया है।

तीसरी वल्ली : इसमें अखंड आनन्द कैसे हो समझाया है। इसे भृगु वल्ली कहा गय है।

शिक्षा वल्ली : में ऋषि स्वर मात्राओं, वर्णों अक्षरों का महत्व समझाते हैं। इन्हीं के जोड़ से वक्यों को बनाया जाता है और फिर ज्ञान मिलता है। वाक्य न बनें तो ज्ञान नहीं हो सकता।

संसार की हर वस्तु किसी दूसरी वस्तु के सहयोग से एक तीसरी वस्तु का निर्माण करती है। सब के एक दूसरे के मिलने को, संहिता का नाम दिया है। साधारण ज्ञान को संहिता और उच्च ज्ञान को महासंहिता कहा है।

ऋषि शिष्यों को हर प्रकार के ज्ञान से पंडित बनाते हैं पर शिष्यों को यह बतलाना नहीं भूलते कि ज्ञान यहीं तक सीमित नहीं, उन्हें इस को परिमार्जित करना होगा।

संसार में व्यवहार करते समय यदि दुविधा हो तो शास्त्रों से समझो, बड़े बूढ़ों से समझो और व्यवहार करो। आश्रम में सीखी अगर कोई बात ठीक न लगे तो उसका त्याग कर दो।

ब्रह्मानंद वल्ली : इसमें बतलाया है ब्रह्म सत्य है, अनन्त है, सारे आकाश में फैला है पर उसका मुख्य स्थान हृदय है और वहीं उस

के दर्शन होते हैं।

रचना क्रिया में ईश्वर ने सर्वप्रथम आकाश बनाया फिर वायु, फिर जल। जल से पृथिवी और फिर अन्न और मनुष्य आदि।

अन्न सबका भोजन है और अन्न सबको खा जाता है। हमें अन्न का कम से कम उपयोग करना चाहिए। अन्नमय शरीर में प्राण का वास है। प्राण सारे शरीर में रहता है।

अन्न और प्राण दोनों के अंदर मन का वास है, वह इन दोनों से सूक्ष्म है। मनोमय काया में विज्ञानमय काया (बुद्धि) रहती है। बुद्धि से शरीर का संचालन होना चाहिए, मन से नहीं।

परमानन्द स्वरूप ईवर इन सब में रहता है यह पूरे शरीर में रहता है।

ब्रह्म के पास पहुंचकर साधक की सब इन्द्रियां और मन वापिस आ जाते हैं अर्थात् उसका वर्णन नहीं कर सकतीं, केवल आत्माा ईश्वर में लय हो जाती हैं।

सब याज्ञिक कर्मों की उत्प्रेरक बुद्धि है अर्थात् विज्ञानमय कोष।

भृगुवल्ली : में बतलाया है कि ईश्वर प्राप्ति में जो आनन्द है, वह अनन्त है किसी अन्य आनन्द की इसके साथ तुलना नहीं हो सकती। यह आनंद ही ईश्वर है। इसे प्राप्त करने के लिए तप करना होता है, वह तप सब इन्द्रियों को नियंत्रण करके किया जाता है।

शिक्षा वल्ली

प्रार्थना

प्रथम अनुवाक

:: 1.1 ::

यह नम्न निवेदन करता हूँ
कल्याण करो हे परमात्मा
तुम, इन्द्र, विरोचन[1], मित्र[2], वरुण[3]
तुम वृहस्पति, विष्णु उरुक्रमा[4]।

:: 1.2 ::

प्रत्यक्ष ब्रह्म तुम आशुग हो
तुम सत्य तथा ऋतु[5] भी ईश्वर
आचार्य तथा इस साधक को
रक्षित रखना अब जीवन भर।

॥ इति प्रथम अनुवाक ॥

द्वितीय अनुवाक

अब करना है शिक्षा हित स्वर-
मात्राओं वर्णों का वर्णन
मात्रा बल उच्चारण संधि[6]
शब्दों की शिक्षा, अध्यायन।

॥ इति द्वितीय अनुवाक ॥

तृतीय अनुवाक

:: 1.1 ::

हे परम पिता अनुकम्पा कर
हम सारे गुरु अरु शिष्यों पर
यश पाएं, सबका तेज बड़े
तेरे गुण गा-गा चर्चा कर।

:: 1.2 ::

सब लोकों, सब ज्योतित तत्वों
विद्या, प्रज्ञा, काया विषयक
ये पांच महा सहिताएं हैं
वर्णन करता हूं, हे साधक!

:: 1.3 ::

अधिलौकिक[7] संहिता[8] अंदर है
पूर्व हमारी पृथ्वी कारक
स्वर्ग लोक है उत्तर रूपी
नभ संधि, आशुग संयोजक।

:: 2 :: .

पूर्व अग्न, ज्योतित तवों में
औ इन में है उत्तर दिनकर

जल' को पैदा करते दोनों
विद्युत से संयोजित होकर

:: 3 ::

आचर्य प्रथम फिर अन्तेवासी
विद्या संहिता के संसाधन
विद्या दोनों की संयोजक
जो मिलती उपदेशों कारण।

:: 4 ::

प्रजा विषय में मात पिता ही
पूर्व तथा उत्तर कहलाएं
संतानें संयोजन का फल
जनन क्रिया द्वारा जो आएं।

:: 5 ::

पूर्व कहें, नीचे का जबड़ा
ऊपर का उत्तर कहलाता
जिह्वा कारण, वाणी संधि
यह तन रूपी आध्यात्मिक्ता।

:: 6 ::

इन पांचों को जिस ने समझा
जैसे ऊपर हैं समझाए
पुत्र, पशु-सुख, अन्न, तेज-सुख
और स्वर्ग सुख को वह पाए।

॥ इति तृतीय अनुवाक ॥

चतुर्थ अनुवाक

:: 1.1 ::

वेदों ने समझाया उत्तम
शाश्वत अमृत जो ओंकेश्वर
जग का स्वामी, वही ॐ दे-
सद्बुद्धि रूपी उत्तम वर।

:: 1.2 ::

योग्य रहे तन वाणी मेरी
मधुर वचन मैं बोलूं हर पल
कानों से शुभ श्रवण करूं मैं
हिय में होवे ईश्वर का बल।

:: 1.3 ::

ढका हुआ है ज्ञान कोष तू
लौकिक मानव बुद्धि द्वारा
जो कोई उपदेश सुनूं मैं
याद रहे वह मुझको सारा।

:: 2 ::

अन्न मिले जल वासन गौएं
रोओं वाली भेड़ें वैभव

ॐ परम जगदीश स्वाहा
इच्छा है कर दो ये सम्भव।

:: **3.1** ::

ब्रह्मचर्य व्रत धारी होंवे
जो भी आएं विद्यार्थी गण
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही कारण।

:: **3.2** ::

कोई भी ना कपटी होवे
जो भी आएं विद्यार्थी गण
ॐ परम जगदीश-स्वाहा
आहुति यह है, इस ही कारण।

:: **3.3** ::

अन्तर मनसे जिज्ञासु हों
जो भी आएं विद्यार्थी गण
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही कारण

:: **3.4** ::

जितने भी विद्यार्थी आएं
करण करें वे अपनी नियमन
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही कारण।

:: 3.5 ::

मन संपित वश में हों सबके
जो भी आएं विद्यार्थी गण
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही कारण।

:: 4.1 ::

जग में अतुलित यश पाऊँ मैं
यह अनुकम्पा कर हे भगवन!
ॐ परम जगदीश स्वाहा
अहुति यह है इस ही कारण।

:: 4.2 ::

धनवानों से ज्यादा धन हो
कृपा करो ऐसी जग तारण
ॐ परम जगदीश स्वाहा
अहुति यह है इस ही कारण।

:: 4.3 ::

मैं आकर तुझमें मिल जाऊँ
दया दिखाओ ऐसी पावन
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही कारण।

:: 4.4 ::

तुम मुझमें समुचित लय होना
विनय करूं मैं तुझसे भगवन

ॐ परम जगदीश स्वाहा
अहुति यह है इस ही कारण।

:: 4.5 ::

अगनित तेरी शाखाओं में
ध्यान लगा बन जाऊँ कुंदन
ॐ परम जगदीश स्वाहा
अहुति यह है इस ही कारण।

:: 5.1 ::

जितनी भी नदियां हैं जग में
वे सब मिलती हैं सागर में
वर्ष मास रात्रि सारे दिन
मिल जाते हैं संवतसर में-

:: 5.2 ::

वैसे ही आश्रम में आकर
यूं हो जाएं विद्यार्थीगण
ॐ परम जगदीश स्वाहा
अहुति यह है इस ही कारण।

:: 5.3 ::

निज आभा में आश्रय देकर
ग्रहण करो हमको तुम भगवन
ॐ परम जगदीश स्वाहा
आहुति यह है इस ही करण।

।इति चतुर्थ अनुवाक ॥

पंचम अनुवाक

:: 1.1 ::

ये भू, भुवः, स्वः तीनों ही
तीन प्रसिद्ध व्याहतियां[10] हैं
अन्य एक है यह चौथी है
महा जिसे कहती श्रुतियां हैं।

:: 1.2 ::

महा चमस के बेटे ने ही
इस चौथी को पहचाना था
इन तीनों की आत्मा है यह
ब्रह्म यही चौथी माना था।

:: 1.3 ::

भू- पृथिवी, अन्तरिक्ष भुवा है
और स्वर्ग को स्वा कहते हैं
सूर्य महा है जिसके कारण
ये सारे महिमा पाते हैं।

:: 2.1 ::

भू शुषुमा[11] है, वायु भुवा है
सूर स्वः है सबके तन में

चांद महा है जिसके द्वारा
महिमा दिखती है इन सबमें।

:: 2.2 ::

ऋक ही भू है, साम भुवा है
यजुर्वेद ही स्वा कहलाता
ब्रह्म महा है जो जग अंदर
वेदों की महिमा फैलाता

:: 3.1 ::

भू है प्राण, भुवा अपान
और स्वा कहलाती ब्यान
अन्न महा इनको महिमा दे
करता है इनका कल्याण।

:: 3.2 ::

चार तरह की ये चारों ही
सोलह इनके भेद हुए अब
इनका ज्ञाता ब्रह्म समझाता
कल्याणी हों ये सबकी सब।

।इति पञ्चम अनुवाक ॥

षष्ठम अनुवाक

:: 1 ::

सब के हिय अंदर जो नभ है
उसमें रहता है अधिशासी
मनोमयी-वह ज्योर्तिमय है-
औ आत्मा अमृत अविनाशी।

:: 2.1 ::

तालू भीतर स्तन सी लटकी
जो घंटी भी जानी जाती
हिय से- उससे ब्रह्मरंद्र तक
श्रेष्ठ सुष्मना नाड़ी आती।

:: 2.2 ::

जितने भी योगी जन होते
इस मग को ही वे अपनाते
अपना कर्पर[12] भेदनकर वे-
प्राण तजें, काया से जाते।

:: 2.3 ::

भू से अभिहित[13] अग्न बैठकर
भुवा वायु से आत्मा जाता

इसी भुवा से स्वा-सूरज फिर
ब्रह्म महा तक है पहुंचाता।

:: 3 ::

ब्रह्म प्राप्त करके सत्यात्मा
पूर्ण ज्ञान का हो अधिकारी
मन, वाणी, नेत्रों कानों की-
करण रहें उसके वश सारी।

:: 4.1 ::

ईश्वर का तन नभ जैसा है
जो सुख में रखता सबके तन
सत्य स्वरूपी वह अविनाशी
रखता आनन्दित सबके मन।

:: 4.2 ::

प्राचीन[14]-योग्य! ईश्वर से मिल
शान्तिक सुख का मिलता दर्शन
ब्रह्म मलेगा तुझको निश्चित
तू कर ईश्वर का ही पूजन।

॥ इति षष्ठम अनुवाक ॥

सप्तम अनुवाक

:: 1.1 ::

स्वर्ग, धरा, आकाश, दिशाएं
और अवन्तर इनके भीतर
अधि भौतिक रूपी यह पंक्ति[15]–
बनती है, इन सब से मिलकर।

:: 1.2 ::

सूरज चंदा आशुग अग्नि
तारों की अधिभौतिक पंक्ति
अधिभौतिक है जल नभ औषध
वनस्पति अवर आत्मिक (शक्ति)।

:: 1.3 ::

आध्यात्मिक में प्राण संग हैं
अपान, व्यान, उदान, समान
और करण पंक्ति है जिसमें
नेत्र, श्रोत्र, चमड़ी, मन, प्राण।

:: 1.4 ::

चर्म, मांस, नाड़ी हड्डी औ
मज्जा सब हैं काया सम्मत

ये सब काया रूपी पंक्तिक
औ आध्यात्मिक हैं परिभाषित।

:: 1.5 ::

ऐसी सम्यक समझ बनाकर
ब्रह्म ऋषि ने समझाया है
सरा जग ही पंक्तिक रूपा
ऐसा सबको बतलाया है।

:: 1.6 ::

भैतिक आध्यात्मिक रूपी ये
आपस में हैं सब सहयोगी
जिनको ऐसी समझ बनेगी
उनको होंगे ये उपयोगी।

।इति सप्तम अनुवाक ।।

अष्टम अनुवाक

:: 1.1 ::

ॐ नाम परमेश्वर सूचक
ॐ कहाता है जग सारा
अनुमोदन का सूचक है यह
अक्षर कहलाता यह न्यारा।

:: 1.2 ::

शिष्य गुरु से ॐ कहे तो
ज्ञान सुनाओ समझा जाता
और ॐ को कहकर ज्ञानी
ज्ञान भरी बातें बतलाता।

:: 1.3 ::

साम गायकी करने वाले
ॐ बोलकर गायन करते
ॐ नाम का उच्चारण कर
शास्त्रों के मंत्रों को पढ़ते।

:: 1.4 ::

यज्ञ कर्म करने वाले सब
ॐ बोलकर बोलें प्रतिगर[16]

हर ब्रह्मा भी ॐ बोलकर

यज्ञ शुरू करता है आकर।

:: 1.5 ::

जो वेदों को पढ़ने आता

ॐ बोलकर बैठे पढ़ना

वेद ज्ञान फिर उसको मिलता

पूरा उस का होता सपना।

॥ इति अष्टम अनुवाक ॥

दशम अनुवाक

:: 1.1 ::

जन्म मरण के अक्षत वट का
करना है मुझ का उच्छेदन
त्रिशंकु-ऋषि मैं ईश्वर रत हूं
अब इस बट का ना है कारण।

:: 1.2 ::

पर्वत की ऊँची चोटी सम
मेरी शोभा चारों दिक है
यह शोभा अमृत सम पावन
ज्ञान मुझे इसका सम्यक है।

:: 1.3 ::

मेरी बुद्धि श्रेष्ठ बहुत है
मैं हूँ अक्षत अमृत वाला
मैं दैवी धन का भंडारक
मैं इस अनुभव में मतवाला।
त्रिशंकु-ऋषि मैं ईश्वर रत हूँ
अब इस वट का ना है कारण।

॥ इति दशम अनुवाक ॥

एकादश अनुवाक

:: 1.1 ::

वेदों का अध्ययन करा के
शिष्यों से तब बोले गुरुजन
सत्य सदा तुम पालन करना
औ धार्मिक तुम जीना जीवन।

:: 1.2 ::

जाओगे अब तुम आश्रम से
सद्ग्रन्थों को पढ़ते रहना
आश्रम धन बिन ना चलता है
धन से इसको सिंचित रखना।

:: 1.5 ::

गृहस्थ बना, संतान निमित
सच्चे पथ से तुम ना गिरना
धर्म निमित जो भी शुभ होवे
उन कर्मों को नियमित करना।

:: 1.4 ::

वेद पठन पाठन करने में
चूक कभी ना करना किंचित

देव तथा पितरों के कारज
करने में रहना सब उद्यत।

:: 2.1 ::

मात पिता सब आचार्यों औ
अतिथि समझना तुम सब ईश्वर
दोषी कर्मों को ना करके
निर्दोषी रहना जीवन भर।

:: 2.2 ::

हम आचार्यों के जीवन से
जो कुछ अच्छा हो ले जाना
जिन बातों पर शंका होवे
कोई उनको ना अपनाना।

:: 2.3 ::

तुम सबके घर में जब कोई
आएं (सच्चे पावन) ब्राह्मण
श्रद्धा पूर्वक आसन देकर
सुख के देना सारे साधन।

:: 2.4 ::

ध्यान सदा यह भी रखना तुम
जब कुछ भी दें, दें, श्रद्धा युत
हे शिष्यो सब! स्थिर वृद्धि रह
देने में तुम रहना उद्यत।

:: 2.5 ::

अगर कभी मन में दुविधा हो
औ देना दीखे दुख कारक
तो भी देते रहना तुम सब
अपने को रख करके सम्यक।

:: 3.1 ::

जब कारज करने हित तुमको
जीवन में हो कोई संशय
या व्यवहारिक दुविधा आए
तब तुम लेना यूं सब निर्णय।

:: 3.2 ::

आसपास में जो कोई भी
ब्राह्मण होवें सद् आचारी
युक्त विचारों से युत होवें
धार्मिक और मधुर व्यवहारी।

:: 3.3 ::

श्रद्धा पूर्वक उनसे जाकर
बतलाना अपनी जिज्ञासा
या जैसे वह ब्राह्मण करते
तुम सारे भी करना वैसा।

:: 3.4 ::

अगर आपके पास कभी भी
लांछित कोई ब्राह्मण आए

उसके लांछन पर आधारित

निर्णय को मन ना कर पाए।

:: 3.5 ::

तब तुम करना जैसे करते

धार्मिक और मधुर भाषी जन

या जैसे वे निपटें उनसे

वैसा ही मग करना धारण।

:: 3.6 ::

हम सब का शास्त्रों वेदों का

केवल ऐसा ही कहना है

परम-पराएं भी यह कहतीं

सब को ऐसे ही चलना है।

सब को ऐसे......

सब को ऐसे......

॥ इति एकादश अनुवाक ॥

द्वादश अनुवाक

:: 1.1 ::

नम्न निवेदन करता हूँ मैं
कल्याण करो अब परमात्मा
तुम इन्द्र, विरोचन, मित्र, वरुण
तुम वृहस्पति, विष्णु, उरुक्रमा

:: 1.2 ::

प्रत्यक्ष ब्रह्म तुम आशुग हो
तुम सत्य तथा ऋत भी ईश्वर
मेरी औ मेरे गुरुओं की
रक्षा की तुम ने जीवन भर।
रक्षा की तुम ने......
रक्षा की तुम ने......

॥ इति द्वादश अनुवाक ॥

।इति शिक्षा वल्ली ॥

संदर्भ

1. विरोचन- अर्यमा- सूर्य, 2. मित्र- दिन और प्राण का अधिष्ठाता, 3. वरुण - रात्रि और प्राण का अधिष्ठाता, 4. उरुक्रमा- विशाल डगों वाला,

5. ऋत - सत्य का संरक्षक, 6. संधि- एक वाक्य का दूसरे वाक्य से जोड़। पहला वाक्य ऐसा बोला जाए कि दूसरा वाक्य पहले का भाग लगे, 7. आधि लौकिक - यह लोक सम्बन्धित, ज्योतिहीन तत्व, 8. संहिता- जब संधि व्यापक हो जाए तब वह संहिता कहलाता है 9. जल- भोग पदार्थ 10. व्याहतिया- सूक्ष्म शब्द जिन से ईश्वर की पूजा की जाती है, 11. भू शुष्मा है- धरती में अग्नि है इसलिए इसे अग्न कहा है। 12. कर्पर- कपाल, 13. अभिहित- कहा हुआ, 14. प्राचीन योग्य- एक शिष्य का नाम, 15. पंक्ति- पांच की पंक्ति, 16. प्रतिगर- मंत्र का नाम

द्वितीय : ब्रह्मानंद वल्ली

प्रथम अनुवाक

:: 3.1 ::

परमात्मा ने सबसे पहले
यह पूरा आकाश- बनाया
और उसी के अंतरगत ही
आशुग-आशुग से जल लाया।

:: 3.2 ::

जल ने रचना की पृथ्वी की
हर औषध उससे उपजाई
अन्न रचाया, औषधियों को
नर ने जिससे काया पाई।

:: 3.3 ::

अन्न देवता का ही रस यह
वीर्य बना नर अंदर पोषित
मानव का शिर ही शिर इसका
मध्य भाग में आत्मा स्थापित।

:: 3.4 ::

बाईं बाजू इसकी उत्तर
औ दायीं कहलाती दक्षिण
पूंछ प्रतिष्ठित दोनों पग हैं
जिनका आगे सब है वर्णन।

॥ इति प्रथम अनुवाक ॥

1. ज्ञान साधना को करने पर पूरा ज्ञानी जो बन पाया ब्रह्म उसे ही मिल सकता है। यही ज्ञान आगे आया है।
2. ज्ञान और विज्ञान स्वरूपी सब जीवों के हिय में रहता। सत्य स्वरूपी वह ईश्वर है भोग जीवन ही भोगा करता।

द्वितीय अनुवाक

:: 1.1 ::

अन्न सदा से इस धरती पर
हर प्राणी का जीवन दाता
जीवन को पूरा कर प्राणी
मरने पर इसमें मिल जाता।

:: 1.2 ::

अन्न श्रेष्ठ है सब भूतों में
औ सर्वोत्तम औषध है यह
ब्रह्म समझकर जो यह पूजे
सब अन्नों से सुख पाए वह।

:: 1.3 ::

सर्वोत्तम यह ही औषध है
भूतों में उत्तम कहलाता
जीव जन्म लें इससे औ यह
इसको खाकर अन्न कहाता।

:: 1.4 ::

हर प्राणी इसको खाता है
औ यह हर प्राणी को खाता

इसी लिए तो अन्न जगत में
अन्न नाम से जाना जाता।

:: 2.1 ::

अन्न स्वरूपी इस काया में
प्राण स्वरूपी आत्मा स्थापित
जो काया ना, काया में ही
रहता है इसके अन्तरगत।

:: 2.2 ::

पूरी काया में ही आत्मा
पूर्ण रूप से रहता व्यापक
इस कारण से ही आत्मा को
काया रूपी कहते साधक।

:: 2.3 ::

पूरी काया में यह व्यापक
रहता है जीवन भर आकर
इस काया का शिर, इसका शिर
मध्य भाग में रहता अम्बर।

:: 2.5 ::

बायां पंख अपान कहाए
औ दायां है इस का ब्यान
पूंछ अवर आधार धरा है
औ आगे भी वर्णित प्राण।

॥इति द्वितीय अनुवाक ॥

तृतीय अनुवाक

:: 1.1 ::

देव, मनुज, पशु, हर प्राणी को
प्राण सदा देता है जीवन
यह कहलाता है सर्वायु
उम्र मिले सब की इस कारण।

:: 1.2 ::

प्राण स्वरूपी ब्रह्म देव का
जो साधक करते हैं पूजन
दीर्घ समय तक उनकी आत्मा
भोगा करती है अपना तन।

:: 1.3 ::

अन्न तथा रसमय कोशों में
जिस जीवात्मा का अनुशासन
प्राणमयी सब जीवों का यह
जीवात्मा ही करता पालन।

:: 2.1 ::

प्राणमयी काया के अंदर
मनोमयी काया का शासन

रूप बनाती जो काया का
सारी काया करके धारण।

:: 2.2 ::

मनोमयी इस काया अंदर
यजुर्ज्ञान इसका शिर (निर्मल)
ॠक दक्षिण है उत्तर साम
और अथर्व! मंत्र हैं पुच्छल।

:: 2.3 ::

अथर्व मंत्रों से होता है-
आधार तथा पुच्छल का वर्णन
मध्य भाग में आत्मा इसके
अब आगे का सुन सब दर्शन।

।इति तृतीय अनुवाक ।।

चतुर्थ अनुवाक

सम्बन्ध रूपी पद-

मन वाणी औ सकल करण जब
आत्मा को ले करके उड़ते
परम पिता उस परमात्मा के
परम धाम तक जाते बड़ते।

:: 1.1 ::

वहां पहुंचकर वाक, नयन, मन
लौटें ईश्वर को ना पाकर
उस मानव को भय ना लगता
जिसने जाना होता ईश्वर।

:: 1.2 ::

मनोमयी इस काया को है
परमात्मा ही करता धारण
पूर्व बताई हर काया पर
परमात्मा का रहता शासन।

:: 2.1 ::

मनोमयी इस काया में ही
विज्ञानमयी आत्मा रहती

मनोमयी पूरी काया ही
इस आत्मा का घर कहलाती।

:: 2.2 ::

पूरी की पूरी नर काया
इस काया का होती है तन
ज्ञानी इस आत्मा हित कहते
पुरुषाकार करे तन धारण।

:: 2.3 ::

विज्ञानमयी मानव रूपी
जो मानव में आत्मिक काया
श्रद्धा को ही उस काया का
ज्ञानीजन ने दिल बतलाया।

:: 2.4 ::

सत्य कहाता उत्तर इसका
औ दक्षिण है सद्व्यवहार
योग, ध्यान ही मध्य भाग है
पूर्ण ज्ञान पुच्छल आधार।

॥ इत चतुर्थ अनुवाक ॥

पंचम अनुवाक

:: 1.1 ::

सारे यज्ञों शुभ कर्मों की
वैज्ञानिकत्ता[1] है उत्प्रेरक
ब्रह्म रूप में इसे मानकर
देव पुरुष बनते हैं साधक।

:: 1.2 ::

जो इसको ही ईश्वर समझे
पाप करे ना आलस भी ना
दिव्य भोग वह भोगे सारे
पापों बिन हो उसका जीना।

:: 1.3 ::

विज्ञानमयी आत्मा का भी
आत्मा होता है श्री भगवन
जो काया के अंदर रहता
पूर्व हुआ है जिसका चिन्तन।

:: 2.1 ::

विज्ञानमयी जीवात्मा में
एक अलग आत्मा का घर है

जिससे व्याप्त रहे वह पूरा
आनन्द वही परमेश्वर है।

:: 2.2 ::

उस का भी आकार वहां पर
मानव की काया सा रहता
और इसी कारण से ईश्वर
जग में पुरुषाकार कहाता।

:: 2.3 ::

प्रिय भाव ही इस का शिर है
मोद, प्रमोद दक्षिण, उत्तर
मध्य भाग में इस काया के
आनन्द रहे (जो सुख का घर)

:: 2.4 ::

स्वयं ब्रह्म ही इस काया के
पुच्छल और आधार कहाए
इस आत्मा की महिमा के हित
ओर मंत्र आगे बतलाए।

।इति पंचम अनुवाक ।।

षष्ठम अनुवाक

:: 1.1 ::

अगर किसी का यह चिन्तन है
ब्रह्म कहीं कोई ना होता
स्वेच्छाचारी वह मानव है
मिट जाती है उसकी सत्ता।

:: 1.2 ::

पर जिसके चिन्तन में रहता
परम ब्रह्म तो है नि:संशित
ज्ञानी ऐसे मानव को ही
संत पुरुष से करते चिन्हित।

:: 2.1 ::

आनन्दमयी काया भीतर
जो भी आकर काया रहती
परमेश्वर ही वह काया है
श्रुति हमें ऐसा समझाती।

:: 3 ::

एक छोटा प्रश्न–
ब्रह्म नहीं समझा है जिसने
क्या मरकर पा सकता ईश्वर

या जिसने उसको समझा है
वह ही पा सकता है मरकर।

:: 4.1 ::

अपने को बहु बन प्रकटाऊं
जब सोचा था ऐसा भगवन
तब उस ने तप करके भारी
विषय किए सारे निरधारण।

:: 4.2 ::

समझ पड़े या जो दिखता है
उस सबकी कर डाली रचना
औ उन सबमें परमेश्वर ने
अपनाया तब आसन अपना।

:: 4.3 ::

मूर्त अमूर्त रूप बनाकर
आ बैठा इस जग में भगवन
उन सबका वर्णन हो सकता
और नहीं भी होता वर्णन।

:: 4.4 ::

वह आश्रय को दे भी, ना भी
जड़ औ चेतन उसको कहते
सत्य झूठ वह सबमें रहता
श्रुति वचन ऐसा समझाते।

:: 4.5 ::

जो जो भी दिखलाई देते
या जो जो अनुभव में आते
उन सबको ही इस जगती में
सत्य सदा ज्ञानी समझाते।

॥ इति षष्ठम अनुवाक ॥

सप्तम अनुवाक

:: 1 ::

पहले तो अव्यक्त यहां था
जिसमें था सारा जड़, चेतन
नाम रूप इस जड़, चेतन में-
रहते, स्वयं बने, श्री भगवन।

:: 2.1 ::

सुकृत अमृत रूपी रस पी
आत्मा हो जाता आनंदित
ईश्वर नभ सम व्यापक ना हो-
तो कोई ना होवे जीवित।

:: 2.2 ::

यह ना होता तो कोई ना
प्राणों का करता सम्पादन
यह आनंद स्वरूपी ही तो
आनंदित रखता सब जीवन।

:: 3.1 ::

परमेश्वर काया बिन रहता
और नहीं देखा जा सकता

इसका ना वर्णन हो, ना ही-
इसका कोई आश्रयदाता।

:: 3.2 ::

उस बिन-काया को पा करके-
कोई भी ना रहता है भय
जो उस में लय होवे मानव
निश्चित ही हो जाता निर्भय।

:: 4.1 ::

जब तक आत्मा का ईश्वर से
थोड़ा सा भी रहता अंतर
जन्म तथा मरने के क्रम का
जीवात्मा को रहता है डर।

:: 4.2 ::

अभिमानी विद्वानों को भी
जन्म, मरण का डर इस कारण
आगे के मंत्रों में भी यह-
विषय किया हमने विस्तारण।

॥इति सप्तम अनुवाक ॥

अष्टम अनुवाक

:: 1 ::

पवन चले ईश्वर से डरकर
सूर उदित हो उससे डरकर
इन्द्र, अग्न, यम, ये सारे भी
कारज-रत हैं उससे डरकर

:: 2.1 ::

जीवन में तरुणाई होवे
चाल चलन का हो उत्तम बल
स्वाध्याय कर, ज्ञानी बनकर-
शासन करने का हो कौशल-

:: 2.3 ::

दृढ़ता होवे अतुलित बल हो
धन दौलत से महके आंगन
सारी पृथ्वी का शासन हो
सुख दायी होवे नर जीवन।

:: 3. ::

मानव-गंधर्वों के सुख इन-
मानव के गुण से हैं शत गुण

भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 4 ::

देवों औ गंधर्वों के सुख
इस से भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 5 ::

पितृ लोक में पितरों के सुख
इस से भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 6 ::

कर्म देव देवों के सब सुख
इससे भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 8 ::

देवें को जो सुख मिलते हैं
इससे भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 9 ::

इन्द्र देव को जो सुख मिलते
इससे भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 10 ::

बृहस्पति को जो सुख मिलते हैं
इससे भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 11 ::

प्रजापति को जो सुख मिलते
इस से भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 12 ::

ब्रह्मा को जो सुख मिलते हैं
इस से भी ज्यादा हैं शत गुण
भोग विरक्त तथा ज्ञानी को
सहज मिलें ये सुख रूपी धन।

:: 13.1 ::

जो नर में है वह सूरज में
जिसने भी इस को पहिचाना

मरकर जब ऐसे ज्ञानी का
धरती से होता है जाना।

:: 13.2 ::

उसकी पांचों ही आत्माएं
बन जातीं अपने अनुरूपी
अन्न, प्राण मय, मनो, ज्ञानमय
और बने आनन्द स्वरूपी।

:: 13.3 ::

इस सबके बारे में हमने
किया यहां आगे भी चिन्तन
ध्यान धरोगे तो पाओगे
जिन जिन बातों का है मंथन

॥ इति अष्टम अनुवाक ॥

नवम अनुवाक

:: 1 ::

जिस दर तक जा वापिस आवें
वाणी आदिक करण तथा मन
उस दर पर आनन्द प्राप्तकर
निर्भय हो जाते ज्ञानी जन।

:: 2.1 ::

श्रति कहे ज्ञानी कोई भी
ऐसा दुख ना भोगे मरकर
किया कभी ना जो उसने हो
पश्चाताप करे वह जिस पर।

:: 2.2 ::

जो कोई भी साधक जग में
पुण्य, पाप को समझा करता
उसकी आत्मा रक्षित रहती
उस में ना संस्कार पनपता।

:: 2.3 ::

इस दूजी वल्ली अंतरगत
जो कुछ था हमने समझाना

पूर्ण हुआ वह सारा दर्शन
सारे उस मग चल सुख पाना।

॥ इति नवम अनुवाक ॥

संदर्भ

1. वैज्ञानिक्ता- बुद्धि

अध्याय तृतीय

भृगु वल्ली

प्रथम अनुवाक

:: 1.1 ::

मृगु ऋषि जी, वरुण पिता से
बोले मुझको ज्ञान करा दो
हे भगवन! हे पूज्य पिताजी!
ब्रह्म ज्ञान मुझ को समझा दो।

:: 1.2 ::

ब्रह्म समझने के साधन हित
ब्रह्म ऋषि ने यह समझाया
अन्न, प्राण औ कान, नयन, मन
वाणी को साधन बतलया।

:: 1.3 ::

प्रत्यक्ष दिखाई जो प्राणी दे
जिस से ये सब पैदा होते
जिसके बल से फिर ये सारे
अपने अपने कारज करते।

:: 1.4 ::

प्रलय समय फिर स्वयमेव ये
मिलते जिसमें वह सर्वेश्वर
पुत्र समझना वह तुझको है
वही समझने की इच्छा कर।

:: 1.5 ::

ऐसा सुन एकान्तिक बैठे
करने को तप द्वारा चिन्तन
तप को करके तब वह समझे
ब्रह्म जिसे कहते, जो भगवन।

॥ इत प्रथम अनुवाक ॥

द्वितीय अनुवाक

:: 1.1 ::

अन्न ब्रह्म है उसने जाना
जिसके करण सम्भव जीवन
फिर इस द्वारा जीवन जीकर
इसमें ही सब करते प्रायण।

:: 1.2 ::

भृगु ऋषि ने यह समझा तो
बोले अपने मन का चिन्तन
वरुण पिता से कुछ न सुनकर
फिर बोला समझाओ भगवन।

:: 1.3 ::

वरुण ऋषि ने उससे बोला
तात्विक्ता समझो फिर से अब
तप से मिलता ईश्वर तपकर
भृगु लगे तप करने फिर तब ।

॥ इति द्वितीय अनुवाक ॥

तृतीय अनुवाक

:: 1.1 ::

भृगु ऋषि ने सोचा ऐसा
प्राण ब्रह्म है जिसके कारण
सारे प्राणी पैदा होते
प्राणों द्वारा जीवें जीवन

:: 1.2 ::

प्राणी अपने जीवन को जब
नव जीवन हित त्यागा करता
प्राण निकलता काया से है
और प्राण में जाकर मिलता।

:: 1.3 ::

यह समझा तो ब्रह्म ऋषि से
बोले अपने मन का चिन्तन
वरुण पिता से कुछ ना सुनकर
फिर बोले समझाओ भगवन।

:: 1.4 ::

वरुण ऋषि ने उस से बोला
तात्विकता समझो फिर से सब

तप से मिलता ईश्वर तप कर
भृगु लगे तप करने फिर तब।

।इति तृतीय अनुवाक ।।

चतुर्थ अनुवाक

:: 1.1 ::

भृगु ऋषि ने फिर यह सोचा
मन ईश्वर है जिसके कारण
सारे प्राणी पैदा होकर
मन कारण ही जीवें जीवन।

:: 1.2 ::

सारे प्राणी जीवन जीकर
जब जीवन को त्यागा करते
तब अपनी माया को तजकर
मन के अंदर आकर रहते।

:: 1.3 ::

यह समझा तो ब्रह्म ऋषि से
बोले अपने मन का मंथन
वरुण पिता से कुछ ना सुनकर
फिर बोले समझाओ भगवन

:: 1.4 ::

वरुण ऋषि ने उससे बोला
तात्विक्ता समझो फिर से सब
तप से मिलता ईश्वर तपकर
भृगु लगे तप करने फिर तब।

।इति चतुर्थ अनुवाक ॥

पंचम अनुवाक

:: 1.1 ::

विज्ञान ब्रह्म है जिसके कारण
सब प्राणी जीवन में आते
फिर इस द्वारा जीवन जीकर
इस में ही जाकर मिल जाते।

:: 1.2 ::

भृगु ऋषि ने यह समझा तो
बोले अपने मन का चिन्तन
वरुण पिता से कुछ ना सुनकर
फिर बोले समझाओ भगवान।

:: 1.3 ::

यह समझा तो ब्रह्म ऋषि से
बोले अपने मन का मंथन
वरुण पिता से कुछ ना सुनकर
फिर बोले समझाओ भगवन।

:: 1.4 ::

वरुण ऋषि ने उससे बोला
तात्विकता फिर से समझो सब
तप से मिलता ईश्वर तपकर
भृगु लगे तप करने फिर तब।

॥ इति पंचम अनुवाक ॥

षष्ठम अनुवाक

:: 1.1 ::

आनन्द ब्रह्म है, जिस कारण-
जीवन में सब प्राणी आते
फिर इस द्वारा जीवन जी कर
इस में जा करके मिल जाते।

:: 1.2 ::

ऐसा उस को ज्ञान हुआ जो
भृगु ज्ञान से जाना जाता
वरुण ऋषि द्वारा समझाया
ब्रह्म ज्ञान यह ही कहलाता।

:: 1.3 ::

परम ज्ञान जो व्योम रूप है
सब कुछ उससे संचालित है
जिस ने इसको समुचित जाना
ब्रह्म ज्ञान में वह स्थापित है।

:: 1.4 ::

ऐसा मानव इस जगती में
अन्न भोग से सम्पन्न होता

और सभी अन्नों का सेवन
कर सकने की क्षमता रखता।

:: 1.5 ::

पुत्र, पौत्र बहु पशुओं को पा
ब्रह्म तेज धारी बन जाता
सम्मानित हो चारों दिक से
सर्व-श्रेष्ठ मानव कहलाता।

।इति षष्ठम अनुवाक ॥

सप्तम अनुवाक

:: 1.1 ::

जो चाहता है अन्न मिले वह-
अन्न कभी भी ना दुत्कारे
अन्न प्राण है हर काया का
और इसी से जीवन धारे।

:: 1.2 ::

काया प्राणों का जीवन है
और प्राण काया का जीवन
अन्न प्राण का जीवन दाता
इन निष्कर्षों का यह कारण।

:: 1.3 ::

जिसने ऐसा समझा है यह
भोगे अन्नवान वह बनकर
ज्ञानी बन जाने के हित में
करे साधना वह जीवन भर।

:: 1.4 ::

भोग सामग्री तब सारी ही
ऐसे मानव को मिल जाए

भोग उचित करने की उसमें
पूरी फिर क्षमता आ जाए।

:: 1.5 ::

पुत्र, पौत्र सब कुछ वह पाए
ब्रह्म तेज भी उसको मिलता
मान चर्तुदिक उसका फैले
और श्रेष्ठतम वह नर बनता।

॥ इति सप्तम अनुवाक ॥

अष्टम अनुवाक

:: 1.1 ::

अन्न अनादर ना करने का
करना है सबको व्रत धारण
अन्न कहा जाता है जल भी
जल होता अन्नों का कारण।

:: 1.2 ::

तेज किया करता जल भक्षण
और तेज में जल है निष्ठित
इससे यह निष्कर्ष निकलता
अन्न अन्न में होता निश्चित।

:: 1.3 ::

जो इसका ज्ञानी हो जाता
उसमें होता वह परिनिष्ठित
अन्नवान वह बनकर साधक
करता इसका भोग सुनिश्चित।

:: 1.4 ::

पुत्र, पशु अरु ब्रह्म तेज से
वह ज्ञानी होता शोभायुत
ऐसे ही ज्ञानी पुरुषों को
श्रेष्ठ किया जाता है चिनहित।

॥ इति अष्टम अनुवाक ॥

नवम अनुवाक

:: 1.1 ::

पृथ्वी अन्न-रूप भोग्या है
अन्न बहुत हो, यह सब लें प्रण
पृथ्वी नभ में निहित सदा से
अतः अन्न है नभ का भोजन।

:: 1.2 ::

पृथ्वी में भी नभ व्यापित है
औ यह पृथ्वी नभ में व्यापित
इस कारण निष्कर्ष यही है
अन्न अन्न के ही आधारित।

:: 1.3 ::

जिसको ज्ञान हुआ यह, वह नर
अन्न भोग से सम्पन्न होता
और सभी अन्नों का सेवन
कर सकने की रखता क्षमता

:: 1.4 ::

पुत्रों, पशुओं को वह पाकर
ब्रह्म तेज धारी बन जाता
चारों दिक से सम्मानित हो
श्रेष्ठ पुरुष वह फिर कहलाता।

॥ इति नवम अनुवाक ॥

दशम अनुवाक

:: 1.1 ::

जो भी सज्जन घर में आए
उसको कोई ना दुत्कारे
तुम सबमें हर कोई ऐसा
जीवन में उत्तम व्रत धारे।

:: 1.2 ::

आगुन्तक को श्रद्धा पूर्वक
अपने घर अंदर बिठलाना
अन्न कमाकर बहुत अधिक तुम
श्रद्धा पूर्वक उसे खिलाना।

:: 1.3 ::

ऐसे शुभकर्मी को जग में
अनायास ही सब कुछ मिलता
मध्य भाव से जो खिलवाए
वह कुछ कुछ कष्टों में पड़ता।

:: 1.4 ::

पर जो मानव अश्रद्धा से
आगुंतक को भोजन देता

अन्न उसे जीवन यापन हित
तिरस्कार पूर्वक ही मिलता।

:: 2.1 ::

परमेश्वर ज्ञानी पुरुषों का
स्वयं कवच बन जाता न्यारा
योग क्षेम भी वह करवाता
प्राणायाम क्रिया के द्वारा।

:: 2.2 ::

हाथों पैरों और गुदा के-
सब कर्मों का जो संचालक-
सोचे यह सब ईश्वर लीला
उसका चिन्तन यह आध्यात्मिक।

:: 2.3 ::

दैवी शक्ति के अंतर्गत
वर्षा बनकर प्यास बुझाता
तड़िता उसके बल से चमके
पशुओं को दे, यश दिलवाता।

:: 2.4 ::

ग्रहों नक्षत्रों में ज्योतित
अमृत बनकर प्रज़ा रचाए
ईश्वर के कारण सब सुख हैं
दैविक यह सब ज्ञान कहाए

:: 3.1 ::

सबका आश्रय ईश समझकर
जो उसकी करते पूजा नित
बहुत प्रतिष्ठा उनको मिलती
श्रुतियों में ऐसा ही वर्णित।

:: 3.2 ::

जो वह पूजित परम समझते
औ उसका करते पूजन हैं
बहुत महान पुरुष वे होते
श्रुतियों में भी यही कथन है।

:: 3.3 ::

पूजित ईश्वर को मन कह कर
जो उस की नित पूजा करते
मनन क्रिया से पूरित होकर
मनन शील वे साधक बनते।

:: 3.4 ::

नमन योग्य वह, समझ उसे जो
नित करते हैं उसको नमना
काम, भोग का उसके सम्मुख
निश्चित है नत मस्तक करना।

:: 3.5 ::

ब्रह्म श्रेष्टतम पूजा के हित
जो माने औ पूजन करते

ब्रह्म बनें ऐसे वे साधक
श्रुति वचन भी ऐसा कहते।

:: 3.6 ::

पूजित परतेश्वर ही यम है
जो उसका करते आराधन
उन के द्वैषक, दुश्मन मिटते
श्रुतियों में है ऐसा वर्णन।

:: 4.1 ::

मानव में जो ईश्वर रहता
वह ही रहता सूरज में भी
ज्ञान हुआ जिसको यह ऐसा
वह अपना तन त्यागे जब भी।

:: 4.2 ::

अन्न, प्राण, विज्ञानमयी बन
फिर आनन्दमयी वह बनता
जैसी इच्छा होवे उसकी
वैसा उसको सुख भी मिलता।

:: 4.3 ::

वह अपनी इच्छा अनुरूपी
जैसी चाहे काया ले ले
जिधर घूमने की इच्छा हो
साम वेद मस्ती में बोले।

:: 5.1 ::

विस्मय! यह कैसी अनुभूति
मैं ही भोग पदारथ गुरुवर
मैं ही उनका भोक्ता, आत्मा
मैं ही संयोजक जगदीश्वर।

:: 5.2 ::

जो कुछ भी दिखता इस जग में
मैं उस सबसे पहले आया
देव पूर्व, मैं ही अमृत था
केंद्र सकल जग का कहलाया।

:: 5.3 ::

जो कोई भी, कुछ भी देता
दान सदा वह मेरा करता
वह जगती के संचालन में
मेरा ही संरक्षक बनता।

:: 5.4 ::

पर जो भोग पदारथ सारे
केवल करता खुद ही सेवन
अन्न स्वरूपी मैं बन करके
कर लेता हूं उसका भक्षण।

:: 5.5 ::

जगत पराभव[1] मैं करता हूँ
सकल ज्योतियां मुझसे ज्योतित

जो कोई भी यह सब समझे
वह मुझमें ही होता परिणित।

:: 5.6 ::

दोहा -
ब्रह्म समझ, पाएं सभी, दिया हमें यह ज्ञान
पूरा यह उपनिषद् है, जग का हो कल्याण।
जग का हो...
जग का हो...

॥ इति तैत्तिरीयोपनिषद ॥

संदर्भ

1. पराभव- तिरस्कार

श्वेताश्वतरोपनिषद्

कुछ ज्ञानी लोग बैठकर संसार की उत्पत्ति की कल्पना करने लगे। वे ध्यान में बैठ गए। ध्यान में उन्हें जो अनुभूति हुई वह इस उपनिषद् में है- संसार की रचना न काल कर सकता है, न नियति, न यह आकस्मिक हो सकती है क्योंकि ये सब आत्मा के अधीन हैं। इसकी रचना आत्मा भी नहीं कर सकती क्योंकि आत्मा ईश्वर के अधीन है।

ईश्वर सर्वज्ञ है, उसके मुख, कान, नयन सब ओर हैं। उसके अनन्त गुण हैं, वह सर्व सामर्थ्यवान है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। सुई के नोके के हजारवें भाग से भी छोटा है, मक्खन के छिलके से भी सूक्ष्म है। वह काष्ठ-अग्नि की तरह सर्वव्यापक है।

परमात्मा, आत्मा और प्रकृति तीनों नित्य हैं। प्रकृति में नित्य परिवर्तन होते हैं पर आत्मा और परमात्मा में परिवर्तन नहीं होते।

आत्मा और परमात्मा दोनों मनुष्य के हृदय में इकट्ठे रहते हैं। ध्यान क्रिया से आत्मा ईश्वर को प्राप्त कर सकती है। जब ईश्वर साक्षात्कार हो जाए तो जन्म-मरण का चक्कर कट जाता है।

कल्पान्त के समय संसार ईश्वर में लय हो जाता है। और कल्प के शुरू होने पर फिर प्रकट होता है।

शान्ति पाठ

हम दोनों रक्षित रहें, कृपा करो भगवान
साथी बनकर हम बढ़ें, शक्त रहें तन प्राण।
ज्ञान हमें जो भी मिले, तेज दिलाए ज्ञान
द्वैष किसी से ना करें, ताप हरो भगवान!
ताप हरो भगवान!

अध्याय - 1

:: 1.1 ::

परम ब्रह्म के ज्ञान की
चर्चा का सत्काज
परम-ब्रह्म का नाम ले
शुरू किया है आज।

:: 1.2 ::

ब्रह्म विषय के कुछ अन्वेषक
बैठे करने को यह चिन्तन
ब्रह्म कौन है, जगत रचे जो
हम सब आए जिसके कारण

:: 1.3 ::

हम किस में स्थापित रहते हैं
कौन रखे हम सबको धारण
ब्रह्म कौन है? जगत रचे जो
हम सब आए जिसके कारण?

:: 2.1 ::

काल स्वभाव, नियति, यदृच्छा[1]
भूत अवर आत्मा किस कारण

यह सारा ही जगत बना है
करना है यह सब अन्वेषण

:: 2.2 ::

काल स्वभाव नियति यदृच्छा
ना कर सकते ये जग रचना
ये सारे मिल जाएं तो भी
ना सम्भव है जग का बनना।

:: 2.3 ::

इसका कारण यह है इन पर
चेतन आत्मा का अनुशासन
आत्मा भी ना कारण इस का
इस पर सुख दुख का है शासन।

:: 3.1 ::

समझ नहीं जब कुछ भी आया
ध्यान लगा सब बैठे ज्ञानी
त्रैगुण द्वारा ढकी ईश की
महिमा सबने तब पहिचानी।

:: 3.2 ::

तब सबने समझा परमात्मा
काल अवर इन सबका कारक
वह ही धारे इन सबको औ
वह ही इन सबका है शासक।

:: 4.1 ::

ब्रह्म[2] चक्र में एक धुरा है
तीन वहां रिम में घेरे[3] हैं
सोलह[4] टुकड़ों से वह जुड़ता
इस में आधा[5] शतक अरे हैं।

:: 4.2 ::

परमेश्वर ने इसी चक्र में
बीस[6] सहायक अरे लगाए
छे अष्टक[7] युत इस चक्के में
एक[8] पाश बहु रूप सजाए।

:: 4.3 ::

ऋषियों ने देखा यह चक्का
तीन[9] मगों पर समुचित चलता
उस के चलने के दो हेतु[10]
जिनके कारण आगे बढ़ता।

:: 5.1 ::

वक्र[11] बनी नदियों को देखा
पांच जगह से जिसका सिंचन[12]
पांच तरंगें[13] - पांच प्राण हैं
पांच[14] ज्ञान, जिन का कारण मन।

:: 5.2 ::

पांच भंवर[15] हैं उठते इसमें
पांच पर्व[16] करती संयोजन

अर्ध शतक[17] वृतियों को लेकर
भोगे[18] पांचों दुख इसका तन।

:: 6.1 ::

ब्रह्म चक्र सबका जीवन है
यह सबका है आश्रय दाता
उस में फंसा यह जीवात्मा
जन्म जन्म ले भटका करता।

:: 6.2 ::

पृथक पृथक निज से ईश्वर से
जब आत्मा का होता परिचय
हर्षित हो करके तब ईश्वर
आत्मा को कर लेता है लय।

:: 7.1 ::

सर्वश्रेष्ठ आश्रय अविनाशी
परमेश्वर वेदों में वर्णित
सारी ही त्रैलोकी रहती
उस परमेश्वर में सुस्थापित।

:: 7.2 ::

तात्विक ज्ञानी तत्पर रहकर
परमेश्वर में लय हो जाते
ऐसा कर जीने मरने से
वे ज्ञानी छुटकारा पाते।

:: 8.1 ::

व्यक्त तथा अव्यक्त रचाता
क्षर अक्षर का कर संयोजन
पूरा जग यह परमेश्वर ही
धारण करके करता पोषण।

:: 8.2 ::

विषयों का भोक्ता आत्मा है
विषय करें उसको बाधित सब
पर जब आत्मा ईश्वर जाने
हो जाता है निर्बाधित तब।

:: 9.1 ::

सर्वज्ञ तथा सामर्थ्यवान
अज्ञानी अरु सामर्थ्य रहित
क्रमशः ईश्वर औ आत्मा हैं
ये अज, इनकी सत्ता निश्चित।

:: 9.2 ::

इन दोनों से भिन्न अन्य है-
यह जग में है भोग्या शक्ति
जन्म नहीं इसका भी होता।
जिस को आत्मा भोगा करती।

:: 9.3 ::

अन्त नहीं है परमेश्वर का
सारे रूपों में वह रहता

वह है कर्ता निर-अभिमानी
औ बनकर रहता अर्कता।

:: 9.4 ::

जब कोई नर तात्विक्ता से
समझे ये हैं ईश्वर सारे
सब बन्धन तज, ईश्वर में वह
ब्रह्म रूप, लय होकर धारें।

:: 10.1 ::

जड़ माया परिवर्तित होती
आत्मा भोक्ता अविनाशी हैं
इन क्षर अक्षर दोनों का ही
परम-ब्रह्म ही अधिशासी हैं।

:: 10.2 ::

ईश्वर चिन्तन करते करते
मन हो जाता जब उसमें लय
तब माया के बन्धन छुटते
मानव हो जाता ईश्वर मय।

:: 11 ::

जो हर सुख औ वैभव छोड़े
स्वर्ग तलक ना जिसे लुभावे
वह ही मानव इस जीवन में
पूर्णकाम साधक कहलावे।

:: 12.1 ::

सबके हिय में परमेश्वर है
उसको ही सब जानें समुचित
उससे बढ़ कर कोई ना है
जिससे कोई भी हो परिचित।

:: 12.2 ::

भोग पदारथ जीवात्मा औ
जो जाने इनका उत्प्रेरक
वह नर सबका ज्ञाता होकर
बन जाता है सच्चा साधक।

:: 12.3 ::

भोग पदारथ जो जाने सब
औ जो जाने आत्मा, ईश्वर
इन तीनों की सत्ताओं को
ब्रह्म बताते हैं ज्ञानी नर।

:: 13.1 ::

ईन्धन रूपी काया में ज्यों
अग्न रूप ना दृगगत होता
अर्थ नहीं इसका यह किंचित
अग्न बिना ईन्धन की सत्ता।

:: 13.2 ::

चेष्टा करने पर ईन्धन से
अग्नि सदा ही जल सकती है

जीवात्मा भी ईश्वर दर्शन
ॐ जपन द्वारा करती है।

:: 14 ::

तन समझो नीचे की अरणि
और ॐ ऊपर की अरणि
ध्यान क्रिया से मथ, जल जाए
ईश्वर रूपी लोपित अग्नि।

:: 15.1 ::

जैसे स्त्रोतों में जल रहता
गौ रस में घी ,तेल तिलों में
अग्न अरणियों में वैसे ही
ईश्वर सत्ता रहे दिलों में।

:: 15.2 ::

सत्य तथा संयम से उसको
जो देखें औ चिन्तन करते
उन लोगों को निश्चिय पूर्वक
परमेश्वर के दर्शन मिलते।

:: 16.1 ::

गौ रस अंदर घी जैसे ही
पूर्ण रूप से फैला रहता
परमात्मा क़ी भी वैसे ही
चारों दिक रहती समरसता।

:: 16.2 ::

आत्म ज्ञान और तप द्वारा
मिल सकता वह हमें, परम है
ग्रन्थ सार जो कहें अगर तो
ब्रह्म वही है, यही मरम है।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

संदर्भ

1. यदृच्छा- आकस्मिक कारण, 2. ब्रह्म चक्र- प्रकृति 3. घेरे- सत रज तम के घेरे, 4. सोलह टुकड़े- मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी रूपी- 8 स्थूल और 8 सूक्ष्म रूप, 5. आधा शतक अरे- आधा शतक वृत्तियाँ, 6. बीस सहायक अरे- 10 इन्द्रियाँ- 5 विषय, 5 प्राण 7 छह अष्टक- इनकी व्याख्या नहीं मिलती, 8. पाश- जीवों को बाँध कर रखने वाला, 9. तीन मग- देवयान, पितृ यान मग और इसी लोक में एक योनि से दूसरी यानि में जाने वाला रास्ता, 10. दो हेतु- पुण्य तथा पाप, 11. वक्र नदिया- संसार का टेढ़ा मेढ़ा, 12. पाँच जगह सिंचन-पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, 13. पाँच तरंगे - पाँच विष 14. पाँच ज्ञान- पाँच ज्ञानेंद्रिय से अर्जित ज्ञान, 15. पाँच भंवर- शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषय, 16. पाँच पर्व- पाँच क्लेश- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, मृत्यु, 17. अर्धशतक वृत्तियाँ- अंत:करण व पचास वृत्तियाँ, 18. पाँच दुख- गर्भ का दुख जन्म का दुख, बुढ़ापे का दुख, रोगों और मृत्यु का दुख

अध्याय -2

:: 1.1 ::

हे सविता[1]! तू कारण जग की
कृपा करो अब ऐसी हम पर
मन, धी तुझमें लय हो जाएं
और जियें हम ज्ञानी बनकर।

:: 1.2 ::

जात वेद सम सभी देवता
सब विषयों को करते ज्योतित
बाही विषयों से हटवाकर
करण मनस में कर दो स्थापित।

:: 2 ::

हे सविता! यह अनुकम्पा कर
तुझमें लय हों हम सबके मन
और परम आनन्द निमित फिर
यत्न करें हम पूरा जीवन।

:: 3 ::

स्वर्ग तथा नभ के अंदर सब
देव भ्रमण करते जो ज्योतित

हे सविता! वे मन, धी अंदर
हो जाएं आकर सुस्थापित।

:: 4.1 ::

निज मन औ धी जिस ईश्वर में
स्थापित करते सारे ब्रह्मण
वह ही होत्रों औ यज्ञों का
पूरे जग में करता नियमन

:: 4.2 ::

वह जाने सबके मन में क्या
वृहत परम वह, जग उत्पादक
उसका चिन्तन मनन करें हम
वह सर्वज्ञी सर्वव्यापक।

:: 5 ::

मन धी के स्वामी परमात्मा!
तुझसे बार बार में जुड़ता
दिल की गहराई से मैं अब
नम्न तुझे श्रद्धा से करता।

:: 6 ::

जात वेद को प्रकटाने सम
ॐ नाम नित जब हो मंथन
प्राण निरोधित[2] होंगे सुख हित
औ तब होगा मन अति पावन।

:: 7 ::

ईश्वर की अनुकम्पा द्वारा
आदि-ब्रह्म का हो आराधन
कर्म करो सब उस के आश्रित
तब छूटें सब संचित बन्धन।

:: 8 ::

छाती, गर्दन, शिर स्थिर-सीधा
करण मनोवश औ हिय वश मन
ॐ बना नैया निर्भय हो
पार करो भव, जो भय कारण

:: 9.1 ::

युक्त रखो साधक चेष्टाएं
युक्त बनाओ जीवन का क्रम
श्वास तजो तब नासान्द्रों से
जब हो जाएं पूरे सूक्ष्म।

:: 9.2 ::

श्रेष्ठ-रथी बिगड़े अश्वों पर
अनुशासन है रखता जैसे
प्राणयाम क्रिया के द्वारा
साधक मन वश कर तू वैसे।

:: 10.1 ::

ध्यान जहां पर करना होवे
शुद्ध जगह हो होवे समतल

पावक पत्थर रेता ना हो
सोम्य ध्वनी कलरव करता जल।

:: 10.2 ::

योग्य गुहा वह ऐसी हो जो
नेत्रों को पीड़ा ना देवे
मन वश करने के हित साधक
उचित क्रिया से ध्यान लगावे।

:: 11 ::

ध्यान समय जो दीखे सूरज
चंदा, आशुग, धुआं, कोहरा
अग्न, स्फुटिक, मनि या जुगनूं
ध्यान सफल समझो बहुतेरा।

:: 12 ::

जो पांचों भूतों को जीतें
उन में पांचों के गुण आते
रोगी, बूढ़े वे ना होते
निज इच्छा से, जग से जाते।

:: 13.1 ::

रोग रहित तन हल्का रहता
तेज लिए रहता मुख मंडल
विषय न उनको मोहित करते
मधुर वचन वे बोलें हर पल।

:: 13.2 ::

ऐसे योगी के तन में से
मधुर सुगन्धी प्रकटा करती
मूत्र तथा मल थोड़ा आए
पहली सिद्धि यह है मिलती।

:: 14 ::

तेजमयी हीरा भी जो हो
मल में लिपटा गंदा लगता
मल हटने पर ही वह हीरा
नैसर्गिक निज तेज छिटकता।

:: 15 ::

दीपक सम ज्योतित हो आत्मा
परम ब्रह्म के करता दर्शन
जो अज, निश्चल, शुद्ध सदा है
वह ही काटे उसके बन्धन।

:: 16.1 ::

सब दिक और अवंतर सबमें
ईश्वर प्रकटे जात गर्भ बन
और वही ब्रह्मांड गर्भ में
अंतरयामी स्थापित भगवन।

:: 16.2 ::

सब दिक उसके मुख औ आंखें
वह है अन्तर-यामी पावन

प्रलय काल उपरांत वही सब-
रचना करके करता धारण।

:: 16.3 ::

सब जीवों के हिय के भीतर
परमेश्वर है स्थापित रहता
और वही जगदीश्वर सब दिक
ध्यान सभी का पूरा रखता।

:: 17 ::

औषध अवर वनस्पतियों में
वह है सब लोकों के भीतर
अग्न तथा जल में भी वह है
नमन करें हम उसको मिलकर।

॥ इति अध्याय-2 ॥

संदर्भ

1. सविता- सबको उत्पन्न करने वाला, प्रसव लेने वाला, ईश्वर
2. निरोधित- रुकना, संयमित होना

अध्याय -3

:: 1.1 ::

जग रूपी यह जाला रचकर
स्वयं जगत पर करता शासन
और उसी शासन कोशल से
भूतों का करता संचालन।

:: 1.2 ::

एकाकी सब लोक रचाता
अरु करता इनका विस्तारण
जो जाने इस परमेश्वर को
वह अमृत रस करता धारण

:: 2.1 ::

जो शासक है सब लोकों का
जो करता इन सबका शासन
रुद्र[1] वही है वह जग आश्रय
अन्य नहीं आश्रय का कारण।

:: 2.2 ::

सब लोकों के भीतर स्थित वह
सबकी रचना, रक्षा करता

प्रलय समय के आने पर फिर
सब अपने में लय कर रखता।

:: 3.1 ::

विश्वत[2] आंखें विश्वत मुख युत
हाथ चरण भी उसके विश्वत
नभ पृथ्वी की रचना करता
एक मात्र परमेश्वर वह सत्।

:: 3.2 ::

मानव के दो हाथ रचे हैं
हर पक्षी के पंख लगाए
जिस जिसको जो आवश्यक है
वैसे उसके अंग बनाए।

:: 4 ::

हिरण्यगर्भ को वह रचता है
सबके उद्‌भव का वह कारण
रुद्र, इन्द्र, सब देव रचे वह
शुभ धी सबको दे वह पावन।

:: 5 ::

हे रुद्र! दिखाओ रूप मधुर
जो पुण्यों से हो आलौकित
पर्वत वासी, कल्याणी, जग –
शान्तिक नज़रों से कर सिंचित।

:: 6 ::

गिरि शान्त परम! पर्वत रक्षक
बाण किये जो तुमने धारण
वह सुखकारी होवें जग हित
दुख बिन होवें सब के जीवन।

:: 7.1 ::

सब जीवों से औ ब्रह्मा से
उत्तम होती जिसकी सत्ता
सब भूतों की काया में वह
काया अनुरूपी बन रहता।

:: 7.2 ::

सारे जग को आवृत रखता
सब दिक व्यापक है परमेश्वर
जिस ज्ञानी ने समझा उसके
जन्म मरन के छूटें चक्कर।

:: 8 ::

सूर्य-वर्ण जो तमस रहित है
मैंने जाना वह जगदीश्वर
उसे समझकर मरना छुटता
अन्य नहीं मग जाता उस दर।

:: 9 ::

जिसके आगे कोई ना है
जिससे ना है कोई अपरम

श्रेष्ठ नहीं है जिससे कोई
ना जिससे बढ़कर ना सूक्ष्म।

:: 9.2 ::

एक अकेले पादप[3] सम वह
दिव्य गगन में निश्चल रहता
उस परमेश्वर के द्वारा ही
परिपूरित है सब की सत्ता।

:: 10 ::

दोष रहित वह निराकार है
सबसे उत्तम वह श्री भगवन
अमर बने जो उसको समझे
नासमझी ही दुख की जकड़न।

:: 11 ::

सब दिक उसके मुख अरु आनन
सब दिक जाता वह जगदीश्वर
सर्वव्यापी वह कल्याणी
सबके हिय में रहता वह स्थिर।

:: 12 ::

परम पुरुष वह सबका स्वामी
सबका शासक, अव्यय, ज्योतित
सुखदायी, दर्शन करने हित
अन्तर मन को करता प्रेरित।

:: 13.1 ::

अंगूठे सी मात्रा उसकी
वह स्थिर रहता हिय में सम्यक
वह ही तो इस सारे जग में
मनस-पटल का सच्चा शासक

:: 13.2 ::

निर्मल हिय के द्वारा जो भी
सतत मनन ईश्वर का करता
वह नर उसको पहचाने औ
जीने मरने से है छुटता।

:: 14 ::

पैर, नयन, शिर, शतशत उसके
जिनसे विश्वत् रूपी ईश्वर
सारे जग को घेरे रखता
दस अंगुल नाभी से ऊपर।

:: 15 ::

जो भी जग में है या होगा
जो बढ़ता कुछ खाकर पीकर
वह सारा कुछ ईश्वर रूपी-
जो है अमृत रूप अधीश्वर।

:: 16 ::

हाथ, चरण हैं सब दिक उसके
आंखें, शिर भी उसके सब दिक

सकल जगत को बाधित रखता
सब दिक से परमेश्वर सम्यक।

:: 17 ::

करण बिना है वह परमश्वर
और करण विषयों का ज्ञाता
सबका स्वामी, सबका शासक
वह ही सब का आश्रय दाता

:: 18 ::

दिव्य परम उस परमेश्वर के
वश में सारे जंगम, स्थावर
नवद्वारी तन में वह रहता
लीला करता अंदर बाहर।

:: 19.1 ::

बिन हाथों के भेंट पकड़ता
बिन पैरों के वह है चलता
बिन कानों के सुने सभी कुछ
बिन आंखों के देखा करता।

:: 19.2 ::

ज्ञान, योग्य जो जग अंदर है
वह उस सबका रहता ज्ञानित
आदि तथा वह परम पुरुष है
वह ना जाना जाता किंचित।

:: 20 ::

सूक्ष्म-तम वह और महातम
हिय कंदरा में रहता छिपकर
सबकी रचना वह करता है
वह रहता संकल्पों बिन पर-

:: 20.2 ::

अपनी अनुकम्पा के द्वारा
वह ईश्वर निज देता दर्शन
उस नर के सब दुख मिट जाते
जिस नर को वह मिलता पावन।

:: 21 ::

ज्ञानी निज अनुभव से कहते
ईश्वर नित है और अजन्मा
मरन जरा बिन सर्वव्यापक
और वही है सबका आत्मा

॥ इति अध्याय-3 ॥

संदर्भ

1. रुद्र- ईश्वर का वह रूप जो शासन करता है, 2. विश्वत आँखें - सब जगह आँखों वाला, 3. पादप- वृक्ष

अध्याय - 4

:: 1.1 ::

रंग रूप बिन वह परमेश्वर
अनजाने कारण के कारण
कल्प समय में अपने बल से
रंग रूप बहु करता धारण।

:: 1.2 ::

अन्त समय में सकल विश्व फिर
परमेश्वर में हो जाता लय
परम पुरुष वह स्वंय सभी को
कर देता उत्तम प्रज्ञा-मय।

:: 2 ::

जात वेद वह सूरज वायु
वह है तारे और चंद्रमा
वह ही जल है प्रजापति भी
और सदा है वह ही ब्रह्मा।

:: 3 ::

पुरुष तथा तू ही नारी है
तू लड़की है तू ही लड़का

तू बूढ़ा लाठी ले चलता
तू ही विश्वत मुख है उसका।

:: 4.1 ::

तू ही नील वर्ण का भंवरा
हरे लाल रंग का तोता
तड़िता युत मेहा सागर औ
सब ऋतुओं का तुही रचेता।

:: 4.2 ::

तूने पैदा लोक किए सब
तू सारे जीवों का मालिक
तू इन सबमें भी रहता है
इन सबमें तू पूरा व्यापक।

:: 5 ::

शुक्ल[1], लाल, काले भूतों की
अजा[2] प्रजा को तुही रचाए
अज्ञानी मोहित जग भोगें
भोग तजे ज्ञानी समुदाए।

:: 6.1 ::

साथ साथ में रहने वाले
मीत बने दो पक्षी आए
एक पेड़ पीपल का जिस पर
दोनों ने निज नीड़ बनाए।

:: 6.2 ::

उन दोनों में एक पेड़ के
स्वाद स्वाद लेकर खाए फल
दूजा मीत वहां पर बैठा
खाए ना, पर देखे केवल।

:: 7.1 ::

बैठे बैठे पुरुष वहां पर
घोर आसक्त हुआ रहता है
असमर्थ अवर सम्मोहित हो
जीवन भर दुख ही सहता है।

:: 7.2 ::

ईश्वर अनुकम्पा से आत्मा
जब साथी के करता दर्शन
उसके जीवन में तब कोई
ना रहता है दुख का कारण।

:: 8.1 ::

देव, ऋचाएं सब ईश्वर स्थित
उस ईश्वर का जो ना ज्ञानी
वेदों से वह क्या पाएगा
दुख ही पाए ऐसा प्राणी।

:: 8.2 ::

पर जिस ने भी तात्विकता से
समझ लिया है वह जगदीश्वर

वह उसमें ही लय हो जाता
लौट नहीं आता फिर जाकर।

:: 9.1 ::

भूत, भविष्यत वर्तमान हित
जो कुछ वेद हमें समझाते
उन छंदों को उन यज्ञों के
क्रुत व्रत[3] सब ईश्वर करवाते।

:: 9.2 ::

माया स्वामी भूतों द्वारा
करता है इन सबकी रचना
पर माया में फसकर आत्मा
दुखमय पाए जीना मरना।

:: 10 ::

प्रकृति माया कहलाती है
औ माया का स्वामी ईश्वर
कार्य तथा कारण अंगों से
व्याप्त रखे जग वह रचनाकर।

:: 11.1 ::

सकल योनियों का स्वामी वह
प्रलय समय सब उसमें मिलते
पर जब फिर वह रचना करता
विवधा रूपों में वे ढलते।

:: 11.2 ::

जगत नियंता वरदायक वह
पूजे जाने का अधिकारी
उसे जनने पर मानव को
परम शान्ति मिलती अविकारी।

:: 12.1 ::

रुद्र, इन्द्र सम सब देवों को
जो पैदा कर करता पालन
हिरण्य गर्भ को जिसने देखा
वह केवल परमेश्वर पावन।

:: 12.2 ::

उस जग स्वामी, उस ज्ञानी से
हम करते हैं यह आराधन
बुद्धिः हम सबकी पावन हो
आध्यात्मिक्ता, मग कर धारण।

:: 13 ::

सब देवों का जो मालिक है
लोक सभी हैं जिसके आश्रित
दो या चार चरण वाले सब
जिसके द्वारा होते शासित।

:: 14.1 ::

वह है सूक्षम से भी सूक्षम
हिय कंदरा में आकर रहता

अविरल जग की रचनाकर वह
बहु रूपों को धारण करता।

:: 14.2 ::

सारा जग सब दिक से घेरे
एक वही ईश्वर कल्याणी
शान्ति उसी साधक को मिलती
जो यह समझे समुचित ज्ञानी।

:: 15.1 ::

समय समय जो ब्रह्मांडों की
रक्षा करता रक्षक बन कर
सारे जग का वह स्वामी है
सबमें रहता वह लय होकर।

:: 15.2 ::

परमेश्वर में ध्यान लगाते
देव तथा सारे ज्ञानी जन
उसको जानो तो कटते हैं
जीने मरने के सब बन्धन।

:: 16 ::

मक्खन के छिलके सम सूक्ष्म
सबमें स्थित वह सब जग धारे
जो समझे वह उसके कटते
जीने मरने के दुख सारे।

:: 17 ::

जगत रचाया जिसने सारा
देवेश्वर वह पूज्य महात्मा
सब जीवों के हिय में रहता
परम पुरुष वह ही परमात्मा

:: 17.2 ::

वह हिय अंदर मन, धी द्वारा
ध्यान लगाओ तो दिखता है
जो कोई उसको जाने वह
उस अमृत में जा मिलता है।

:: 18.1 ::

अज्ञान मिटे, रात्री दिन का
असत् तथा सत अंतर मिटता
शेष यहां जो भी बचता है
वह कल्याणी शिव कहलाता।

:: 18.2 ::

सूरज जैसे सब देवों से
वह अक्षर ही होता पूजित
ज्ञान सकल, सारी जगती का
उस अक्षर से होता प्रेशित।

:: 19 ::

इधर उधर से ना ऊपर ना
मध्य भाग से पकड़ा जाए

उसकी ना उपमा हो सकती
परम महात्तम वह कहलाए।

:: 20 ::

देख सकें ना आंखें उसको
ना नजरों में ही वह आता
सब लोगों के हिय के अंदर
वह स्थापित है ईश विधाता।

:: 20.2 ::

वह तो केवल श्रद्धा पूर्वक
निर्मल मन द्वारा हो दृगगत
ऐसे जो जाने ईश्वर को
अमर बना करते वे निश्चित।

:: 21 ::

मैं शरणागत, तेरी फिर से-
भव में ना आऊँ दोबारा
कल्याणी बन करके मेरे
कष्टों से कर दो छुटकारा।

:: 22.1 ::

रुद्र! करें हम तेरी पूजा
अपनी नाना भेंटों द्वारा
कुपित कभी ना होना हम पर
देव हमें है तू अति प्यारा।

:: 22.2 ::

पुत्र, पौत्र गौएं भेड़ें औ
धन वैभव हों रक्षित भगवन
वीर हमारे जो हैं साथी
उन सबका हो लम्बा जीवन।

॥ इति अध्याय-4 ॥

संदर्भ

चौथे मंत्र का आशय है सभी रंग रूप परमेश्वर के हैं।

1. शुक्ल लाल काले भूत-त्रिगुण मयी माया, 2. अजा- प्रकृति के सारे रूप, 3. क्रुत- विशेष यज्ञ. कार्य तथा कारण अंगों से का अर्थ है- कार्य और कारण सिद्धांत के अनुसार

अध्याय - 5

:: 1.1 ::

विद्या[1] और अविद्या[2] दोनों
वास करें परमेश्वर के दर
श्रेष्ठ बहुत ब्रह्मा से जो हैं
गूढ़, अनन्त, असीम अरु अक्षर।

:: 1.2 ::

जड़, अविद्या दोनों क्षर हैं
औ अक्षर विद्या अविनाशी
इन दोनों से बहुत विलक्षण
परमेश्वर इनका अधिशासी।

:: 2.1 ::

सकल योनियां सब रूपों पर
हर कारण पर उसका शासन
कपिल ब्रह्म को ज्ञानित करते
सब विद्याओं द्वारा भगवन।

:: 2.2 ::

पूर्व समय में परमेश्वर ने
कपिल[2] ब्रह्म का आना देखा

और उसी से होते सारे
सब ज्ञानों से पूरे दीक्षित।

:: 3 ::

ईश्वर ने इस जगत क्षेत्र के
बहु विद जाल बनाए सुंदर
और प्रलय के समय सभी ये
संहारे, ले अपने अंदर।

:: 4 ::

इधर उधर, ऊपर नीचे से
जग आलौकित करता दिन-कर
वैसे सब कारण भूतों का
एकाकी शासक परमेश्वर।

:: 5.1 ::

वह ही परम पिता परमेश्वर
इस जग का है केवल कारण
निज इच्छा से सब तत्वों का
वह ही पूरा करता पालन।

:: 5.2 ::

सब तत्वों को रचकर ईश्वर
गुण का गुण से योग करावे
एकाकी ही वह इन सबको
नियमन करके जगत रचावे।

:: 6.1 ::

गूढ़ ज्ञान सारे वेदों का
उपनिषदों में ही वर्णित है
वेदों की रचना किसने की
ब्रह्मा को ही ज्ञान उचित है

:: 6.2 ::

ब्रह्मा बिन भी जिन देवों को
या ऋषियों को ज्ञान हुआ यह
वे सारे ही परमेश्वर में
लय होकर के होते निर्भय।

:: 7 ::

गुण[4] युत, कर्मज फल से बाधित
आत्मा जब तन त्यागा करता
फल अनुरूपी पाकर योनि
भिन्न भिन्न रूपों में आता।

:: 8.1 ::

अंगूठे सी मात्रा इसकी
चमके जैसे श्रेष्ठ विरोचन
संकल्प, अहं करता आत्मा
अपनी बुद्धि के गुण कारण।

:: 8.2 ::

आत्मा सूक्षम से सूक्षम है
सूजे[5] की नौका के सम है

अपर ब्रह्म से भिन्न बहुत है
ज्ञानी जन का यही मरम है।

:: 9 ::

बाल अग्र का सोवां हिस्सा
फिर उसका भी सोवां होवे
जीव उसी हिस्से के सम है
फिर भी सीमा बिन कहलावे।

:: 10 ::

ना नर, ना नारी रूपी वह
लिंग रहित वह नहीं नपुंसक
जिस भी काया को वह धारे
रूप वही उस का निर्णायक।

:: 11.1 ::

जीवन में काया बढ़ने हित
भोजन, जल, वर्षा है वांछित
सबके मिल जाने पर आत्मा
नव जीवन से होवे परिचित।

:: 11.2 ::

दृष्टि क्रिया से, संकल्पों से
या फिर भोग क्रिया कर पालन
संख्या बल के बढ़ने के हैं
भिन्न योनियों में बहु कारण।

:: 11.3 ::

भिन्न भिन्न लोकों में आत्मा
कर्मों के अनुरूपी जाता
और वहां फिर बारी बारी
भिन्न भिन्न जीवन अपनाता।

:: 12 ::

तन, गुण, कर्मों और अहं से
जीव स्थूल या सूक्षम बनता
रूप मिलेगा क्या औ कैसे
इसका निर्णय ईश्वर करता।

:: 13.1 ::

इस दुर्गम से जग के भीतर
व्यापित है बहु रूपी ईश्वर
आद्य रहित औ अंत रहित वह-
परमेश्वर है जग रचना कर।

:: 13.2 ::

परमेश्वर ने ही इस जग को
सकल दिशाओं से घेरा है
जो जाने वह उस का छुटता
जीने मरने का फेरा है।

:: 14.1 ::

जगत रचाए औ संहारे
वह परमेश्वर परम सदाशय

सोलह कलां बनाई उसने
सब दिक अनुभव में वह आए।

:: 14.2 ::

जो भी साधक श्रद्धा पूर्वक
जीते औ जाने परमेश्वर
वह जब अपनी काया त्यागे
ना फिर धारे काया फिर फिर।

॥ इति अध्याय - 5 ॥

संदर्भ

1. विद्या- चेतनता, जीव समुदाय, 2. अविद्या- जड़ प्रकृति, 3. कपिल ब्रह्म - हिरण्य गर्भ, ब्रह्मा, 4. गुण युत- अपने गुणों के अनुसार, 5. सूजा- सुई

अध्याय - 6

:: 1.1 ::

जगत स्वभाविक ही बनता है
कुछ मोहित जन करते वर्णन
कुछ मोहित हो ऐसा कहते
काल जगत का वास्तविक कारण।

:: 1.2 ::

वास्तव में यह जग जो फैला
दिखलाता यह महिमा ईश्वर
और उसी महिमा के द्वारा
ब्रह्म चक्र यह घूमे फिर फिर।

:: 2.1 ::

जगत व्याप्त सारा ईश्वर से
काल कहाता जो कालों का
सर्व गुणी वह सब कुछ जाने
वह ज्ञानी सारे ज्ञानों का।

:: 2.2 ::

कर्म विधान सकल इस जग में
परमेश्वर से होता शासित

पृथ्वी, जल, नभ तेजस सारे
उसके द्वारा ही निर्देशित।

:: 3.1 ::

सब भूतों की रचना रूपी
सब कर्मों का करके चिन्तन
जगत रचाने के हित ईश्वर
मेल कराता जड़ औ चेतन।

:: 3.2 ::

ईश, अविद्या, पाप, पुण्य औ
त्रैगुण, आठों[1] रूपी माया
काल तथा सूक्ष्म अत्मिक गुण
ये साधन ले जगत रचाया।

:: 4.1 ::

त्रैगुण व्यापित, सब कर्मों का
योगी करता जब संचालन
सकल भावनाएं वह अपनी
परमेश्वर को करता अर्पण।

:: 4.2 ::

कर्मज फल जब छुट जाते सब
मिट जाते अर्जित संस्कार
चेतन आत्मा तब ईश्वर में
हो जाती है एकाकार।

:: 5.1 ::

आदि पुरुष वह कला रहित है
औ तीनों कालों से ऊपर
जीव तथा प्रकृति मिलन के
कारण का वह कारण ईश्वर।

:: 5.2 ::

सबके हिय स्थित विश्वतरूपी-
बनकर प्रकटा करता भगवन
स्तुति योग्य सबका पूजक वह
केवल होवे उसका पूजन।

:: 6.1 ::

काल अकार बिना जग पादप[2]
वह है जिस कारण से चलता
वह इन सबमें से ना है औ
अन्य परम वह पावन सत्ता।

:: 6.2 ::

ऐश्वर्यों का मालिक हिय स्थित
पाप घटाकर धर्म बढ़ावे
मूल जगत का जो यह समझे
अमृत पावन पद वह पावे।

:: 7 ::

परम पतीश्वर वह पतियों का
देवों देवेशों का ईश्वर

भुवनेश्वर है परम पूज्य है
दिव्य तथा वह है जगदीश्वर।

:: 8.1 ::

ना काया, ना कोई इन्द्री
ना ही उसका होता है मन
उससे ना बढ़कर कोई है
ना वैसा जैसा वह भगवन।

:: 8.2 ::

वह अपरम ज्ञानी है उसमें
कर्मों की अपरम क्षमताएं
दिव्य शक्तियां अपरम बल है
वेद हमें ऐसा समझाएं।

:: 9.1 ::

ना स्वामी ना शासक उसका
लिंग रहित है परम विधाता
वह हर कारण का कारण है
करण सभी में वह है रहता।

:: 9.2 ::

पूर्ण जगत में कोई ना है
पैदा जिससे हो जगदीश्वर
ना उसका कोई शासक है
ना स्वामी ना उससे बढ़कर।

:: 10.1 ::

जैसे मकड़ी अपने बल से
रचना करती अपना जाला
वैसे परमेश्वर निज बल से
कितने ही रूपों में फैला।

:: 10.2 ::

उन रूपों से स्वाभिवक वह
अपने को रखता आछादित
औ ईश्वर अनुकम्पा कर के
हम सबको ले अपने आश्रित।

:: 11.1 ::

सर्वव्यापी अन्तरयामी
हिय कंदरा में रहता स्थापित
सबके कर्मों का निर्णायक
भूत सकल उसके अन्तर्गत।

:: 11.2 ::

वह साक्षी है सब भूतों का
सबकी चेतनता का कारण
शुद्ध सर्वदा वह ईश्वर है
वह निर्गुण है औ अतिपावन।

:: 12 ::

जीव जगत में जो अक्रिय हैं
उन जीवों का भी वह शासक

बीज रूप से उन सबको वह
बहु रूपी करता जग पालक।

:: **13.1** ::

चेतन औ सत आत्माएं हैं
परमेश्वर भी सत औ चेतन
आत्माओं के कर्मों के फल
पमेश्वर ही करता नियमन।

:: **13.2** ::

ज्ञान तथा कर्मों से ज्ञानित
वह देवेश्वर का भी कारण
ऐसा अनुभव होने पर ही
कटते संस्कारों के बन्धन।

:: **14.1** ::

सूरज, चंदा, तारे, तड़िता
चमक न कोई उस तक जावे
आशुग तो केवल इह-लौकिक
सम्भव कैसे उसको पावे?

:: **14.2** ::

ये सब तो उसके ही तप से
ज्योतित होते हैं बेचारे
पहले चमके वह फिर चमकें
भूत पदारथ जग में सारे।

:: 15.1 ::

पूरे जग के ठीक मध्य में
परम तत्व है जो आलौकित
जल में स्थित वह बड़वानल है
इसमें ना है संशय किंचित।

:: 15.2 ::

इसको जानो तो मिटते हैं
जीने मरने के सब बन्धन
दिव्य परम तक जाने का तो
ओर नहीं है कोई साधन।

:: 16 ::

स्वयं बना वह ज्ञान स्वरूपी
सर्वज्ञी वह जाना जाता
कालों का वह महाकाल है
दिव्य गुणों से युत कहलाता।

:: 17.1 ::

लोकपाल जो है उनमें वह
अमृत रूपी तन्मय स्थापित
सर्वग रक्षक सर्वज्ञी वह
उसके द्वारा ही जग शासित।

:: 17.2 ::

पूरे जग में ना कोई है
जो उसका शासक हो सकता

इस हित में तो पूरे जग में
एक स्वयं वह अपनी सत्ता।

:: 18 ::

प्रथम रचा कर ब्रह्मा को फिर
वेद ज्ञान से किया विभूषित
मैं हूँ मोक्षाकांक्षी मैं हूँ
तन, मन से ही उसके आश्रित।

:: 19.1 ::

कला नहीं है परमेश्वर में
ओर क्रिया भी ना करता है
वह निर्दोषी अरु निर्मल है
शान्त सदा ही वह रहता है।

:: 19.2 ::

वह अमृत पाने हित सेतु
जले हुए ईंधन सम पावन
जातवेद सम वह ज्योतित है
वरण करूँ मैं वह अति पावन।

:: 20 ::

जब मानव समुदाए नभ को
पूरे चमड़े से ढक लेगा
तब उसको ईश्वर जाने बिन
दुख कष्टों से अन्त मिलेगा।

:: 21.1 ::

श्री श्वेताश्वतर एक ऋषि था
भारी तप को करके जिस ने
परमेश्वर अनुकम्पा द्वारा
परमेश्वर को जाना उस ने।

:: 21.2 ::

श्वेताश्वतर वह श्रेष्ठ बहुत था
अहं रहित पूरा ज्ञानित था
ऋषियों से सेवित आश्रम में
ज्ञान दिया उसने समुचित था।

:: 22.1 ::

पूर्व समय में गुह्य ज्ञान यह
देव ऋषि श्वेताश्वतर पाया
वेदों के अंतिम हिस्से में
इसका पूरा वर्णन आया।

:: 22.2 ::

परम ज्ञान यह देना उनको
शान्त सदा होवें जिनके मन
उनमें से भी केवल उनको
जो सुत हों, या चाहें शिक्षण।

:: 23 ::

ईश्वर में जिनको हो श्रद्धा
औ गुरुओं में हो अनुरक्ति
ऐसे साधक के हिय अंदर

ब्रह्म ज्ञान की बगिया खिलती।

॥ इति श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥

संदर्भ

1. आठ रूपी माया- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार आठ रूपों की प्रकृति 2. पादप- जगत रूपी वृक्ष

❑❑❑

ईश्वर नित्य है, अजन्मा है, अणु से अणुतर है, वह स्थिर भी है और चंचल भी। इतना चंचल कि मन की गति भी फीकी पड़ जाए। वह वायु रूप है और जिस शरीर में जाता है वही रूप धारण कर लेता है। वह अग्नि रूप है और सारे संसार को प्रकाश और ताप देता है। संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति मात्र है। संसार के सारे भोग और भोग-पदार्थ अनित्य हैं। जब भोग प्राप्त होता है तो आनन्द मिलता है पर इन भोगों को त्यागने में जो आनन्द मिलता है वह उनकी प्राप्ति के आनन्द से कई गुणा अधिक होता है।

जीवन का ध्येय नित्य परमानन्द की प्राप्ति है जो ईश्वर साक्षात्कार से हो सकता है पर ईश्वर साक्षात्कार अनित्य वस्तुओं से नहीं हो सकती।

ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ निवास स्थान हृदय है। वहाँ हमारी आत्मा का निवास भी है। वहाँ पर आत्मा को उस का साक्षात्कार हो सकता है। साक्षात्कार के लिए सब इन्द्रियों को शान्त कर मन के अधीन करना होगा, मन को, बुद्धि के अनुसार चलाना होगा और बुद्धि को आत्मा में रत कर आत्मा को ईश्वरमय करना होगा। तभी सब संस्कार जो आत्मा पर आवरण के रूप में हैं, हटेंगे और ईश्वर साक्षात्कार सम्भव होगा।

(उपनिषद् सार)
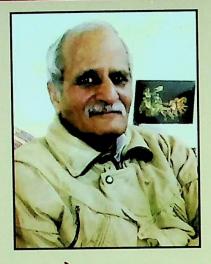
रमेशचन्द्र गुप्ता

चीफ़ इन्जीनियर एवं

मैम्बर पब्लिक सर्विस कमीशन (रिटायर्ड)

मूल निवासी :

कोटली, गुलाम जम्मू कशमीर

वर्तमान पता :

48, रिहाड़ी कॉलोनी, जम्मू (जम्मू कश्मीर)-180005

दूरभाष :

1912560696, 9622241873

प्रकाशित ग्रन्थ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता
2. कठ आदि नौ उपनिषदों का काव्यानुवाद
3. ब्रह्म सूत्र (वेदान्त दर्शन) काव्य में

आने वाले ग्रन्थ :

◆ साम वेद काव्यानुवाद

अयन प्रकाशन

साहित्य संस्कार के 40 वर्ष